
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891:38
Book No. Y16B
Received No. 3638

भेड़ और मनुष्य

हिन्दी के सुपरिचित कथाकार श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' का यह तीसरा मौलिक कहानी-संग्रह है। इसमें गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध सात ऐसी लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी दर्शनीय है।

विगत महायुद्ध में हमारी सामाजिक तथा पारिवारिक व्यवस्था को जो गहरी ठेस पहुँची, उसकी मार्मिक पृष्ठभूमि पर ही इन कहानियों का निर्माण किया गया है।

कहानियों का चित्रण और कथानक इतना सजीव और सरस है कि किसी भी कथा-प्रेमी को यह संग्रह मुग्ध कर देगा। लेखक का अनुभव और निरीक्षण इतना गहरा है कि पाठक अनायास ही उसकी भाव-लहरियों पर बहने लगता है।

सफल चित्रण और शिष्ट मनोरंजन से ओतप्रोत यह कहानी-संग्रह हिन्दी के सभी पाठकों का समान रूप से मनोरंजन करेगा।

भेड़ और मनुष्य

[मौलिक कहानी-संग्रह]

कथाकार

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) लिमिटेड, इलाहाबाद

१९५६

मूल्य १॥)

मुद्रक
नरेन्द्र प्रिंटिङ्ग वर्क्स
इलाहाबाद

'आजकल' के भूतपूर्व व 'सारिका'
के वर्तमान सम्पादक श्री चन्द्रगुप्त
विद्यालंकार जी को सादर

हमारे अन्य प्रकाशित
चन्द्र जी के उपन्यास

(१) सावित्री
(२) एक कमरे की कहानी

प्रकाशकीय

नवरत्न प्रकाशन का आधार एक दिन अचानक ही राजस्थान के यशस्वी साहित्यकार श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के कथन पर बन गया। श्री चन्द्र ने हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करके राजस्थान का मान बढ़ाया है और उनकी तेलगु, गुजराती, मराठी, सिन्धी तथा उर्दू में अनुवादित प्रकाशित कृतियों ने राष्ट्रभाषा का मस्तक गौरवान्वित किया है।

हमारी ओर से उनकी अधिक से अधिक पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना रहेगी और अन्य प्रकाशकों से छपी उनकी पुस्तकें भी आप यहाँ से सहजता से प्राप्त कर सकेंगे।

इस प्रकाशन के अवसर पर हम चन्द्र जी के बीकानेरवासी आत्मीयजनों एवं चित्रकार माली (दिल्ली) क्रांति (बीकानेर) के भी आभारी हैं। क्रांति जी ने आवरणों के मूलाधार रचे और माली जी ने उनमें फिनिसिंग टचेज देकर रंग भरे।

एक बार मैं अपने व्यक्तिगत रूप से उन तमाम राजस्थान वासी तथा प्रवासी लोगों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने चन्द्र जी की पुस्तकें अग्रिम खरीदकर मुझे बल दिया।

शांतिदेवी 'भट्टाचार्य',
प्रबन्धिका

अनुक्रम

१. कथा परिकथा	९
२. पत्थर में पानी	२०
३. मैं मर गई हूँ	३०
४. आँचल का विद्रोह	४२
५. एक सीमा	५२
६. मनमोहिनी	६४
७. गिर्जे पर पथरायी दृष्टि	८०
८. एक मीनार और दो टूटे दिल	९२
९. टूटे हुए इन्सान	९९
१०. एक इन्सान की मौत : एक इन्सान का जन्म	१०९
११. गोमती	१२३
१२. मिस प्रभु और उनका फोड़ा	१३३
१३. मैड हाउस	१४७
१४. तस्वीर का दूसरा पहलू	१५७
१५. एक मुस्कान एक जिन्दगी	१७२
१६. कोई सम्बन्ध नहीं	१७५

मैं इतना ही कहूंगा

प्रस्तुत कहानी संग्रह मेरा चौथा कहानी संग्रह है। इसमें मेरी सभी विधाओं की लिखी कहानियां संग्रहीत हैं। मैं नयी-पुरानी कहानी की विवेचना में न उलझ कर यह कहना चाहूँगा कि मैं लेखन का उद्देश्य केवल कोरा मनोविश्लेषण एवं क्षण की अनुभूति को नहीं मानता। लेखक की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब वह किसी उद्देश्य विशेष से लिखा जाय।

इसके प्रकाशन पर मैं नवरत्न प्रकाशन के सहयोगियों का अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने मेरे विचारों को मूर्त दिया। आपकी सम्मति की प्रतीक्षा रहेगी।

साले की होली
बीकानेर

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

अगर तुम्हारा स्तर वही है जो जीवन का है, अगर तुम्हारी कल्पना ऐसे नमूनों की रचना नहीं कर सकती जो जीवन में मौजूद न रहते हुए भी उसे सुधारने के लिए आवश्यक है तब तुम्हारा कृतित्व किस मर्ज की दवा है और तुम्हारे धंधे की क्या सार्थकता है ?

—गोर्की

(एक पाठक से)

कथा-परिकथा

क्या करूँ सम्बोधन ? एक अपरिचिता को सम्बोधन भी जल्दी मे नहीं किया जा सकता है, लेकिन तीन पत्रों को भेज कर मैं कुछ-कुछ ऐसा समझने लगा हूँ कि तुम मुझ और मेरी हरकतों से नाराज नहीं हो। तुम्हें मेरी बातों का समर्थन है।

सच, जब से तुम इस मकान में आई हो, मैं निरन्तर इस खिड़की की राह तुम्हारे भीगे सौन्दर्य के माधुर्य को दृष्टि द्वारा रसास्वादन करता रहा हूँ और मुझे लगता है कि वर्षों की प्रतीक्षा के बाद मैं जिस "चीतरा" की खोज करता रहा हूँ, वह स्वतः ही मेरे पास आ गई है। इस कल्पना-मात्र से कि तुम मेरे पास हो, मेरे अन्तस की समस्त ध्वनियाँ अपने समस्वर में गा उठती हैं—"तुम्हीं मेरी कविता की सजीव प्रेरणा हो, मेरी आराध्य और पथ की पाथेय हो।" तुम्हें एक बार फिर याद दिला रहा हूँ कि मैंने तुम्हे तीन पत्र दिए हैं। तुमने वे तीनों पत्र पाकर किसी तरह की अपने और मेरे घर वालों से शिकायत नहीं की, किसी तरह का विरोध-अवरोध भी नहीं किया तब मैंने समझा कि तुम भी मुझे उतना ही चाहती हो, जितना मैं तुम्हें चाहता हूँ क्योंकि तुम्हारा मौन ही मेरे प्यार की स्वीकृति है।

तुम्हारा नाम क्या है, मै नही जानती। किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है, मेरी कल्पना का कहना है कि तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा नाम 'गुलाब' से कम क्या रखा होगा! तुम्हे पाकर हर युवक अपने को धन्य समझेगा? तुम मुझे अपनी ओर से स्वीकृत लिख दो। मै समाज और संसार से टक्कर लेकर भी तुम्हे प्राप्त करूँगा।

एक बात और पूछना चाहता हूँ—तुम मुझे सदा खामोश और बुझी-बुझी नजर से क्यों देखती हो? तुम्हारे रसीले अधरों पर सूखी मुस्कान क्यों रहती है? कभी-कभी मै इन सब बातों को लेकर बड़ा परेशान हो जाता हूँ। तुम्हारे पास आने तक की सोच लेता हूँ लेकिन अपरिचित पड़ोसी समझकर मेरा साहस टूट जाता है। फिर तुम लोग नये हो। किसी से बोलते तक भी नहीं हो। तुम्हारे घरवालों का मौन मुझमें भय पैदा कर रहा है, लेकिन इस पत्र का उत्तर नहीं आया तो याद रखना मै जहर खाकर आत्म-हत्या कर लूँगा। सोच लूँगा कि मैं किसी के लायक नहीं हूँ। मैं अभागा हूँ। मैं तुम्हारे पत्र का पूरे चौबीस घंटे इन्तजार करूँगा। इस पर भी उत्तर नही आया और तुमने कोई गड़बड़ी की तो मेरी लाश तुम्हारी इस खिड़की के नीचे मिलेगी, मेरी मौत का सारा पाप, सारी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी। बस,

तुम्हारे पत्र का प्यासा
—नरोत्तम उर्फ "कवि कमल"

कवि कमल को इस उत्तेजना व धमकी से भरे पत्र के उत्तर की आशा नही थी। वह सुबह-सुबह ही अपने बरामदे में एक कापी और पेन्सिल लेकर बैठ गया। कभी आकाश की ओर देखता, कभी जमीन की ओर और कभी बरामदे की निर्जीव दीवारों की ओर। कभी-कभी कुछ लिखने का उपक्रम भी करता मानों अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में वह कोई प्रतीक्षा गीत लिख रहा हो।

जैसे ही बारह बजे वैसे ही उसकी नई पड़ोसिन उसके सम्मुख उदास आकर बैठ गई। आज उसने उसकी ओर देखा भी नहीं। कवि महाराज

का दिल धक से रह गया। उसने सोचा कि आज इसने अवश्य उसके पत्रों को अपने बाप को बता दिया है। इस विचारमात्र से उसके ललाट पर पसीना छूट गया। वह उद्विग्न हो गया। उसने झट से नीचे आंगन में जाकर देखा—उसका बाप बहियों मे उलझा हुआ था। वह चुपचाप आकर बैठ गया। उसने सोचा कि अगर वह उसके पिता को कह भी देगी तो उसका क्या अहित होगा ? वह अपने पिता को साफ-साफ कह देगा कि वह उससे विवाह करेगा ही, उसके बिना नहीं रह सकता, अगर उसकी शादी नही हुई तो वह सचमुच आत्म-हत्या कर लेगा। उसके चेहरे पर फिल्मी प्रेमी की तरह कृत्रिम दृढ़ता आई और वह एकटक गुलाब को देखने लगा। वह अत्यन्त भावावेश और उत्तेजना मे था।

तभी एक कागज गोलाकार मे आकर उसके बरामदे मे पड़ा। उस-ने लपक कर उसे उठाया। मन की बाछें खिल गई। शरीर में जान आ गई। उसने पढ़ा—

कमलजी,

मैं आपका नाम जानती हूँ। कैसे जानती हूँ, यह नहीं बता पाऊँगी।··· मैं आपकी धमकी से डर गई हूँ। मुझे लगा कि आप सच-मुच आत्म-हत्या कर लेंगे और आपकी लाश मेरी खिड़की के नीचे पड़ी मिलेगी, इस दुष्कल्पना मात्र से मेरा खून बरफ की तरह जमने लगा और मैंने आपके पत्रों का उत्तर देना निश्चय किया।

मेरा यह पत्र आपको मेरे बारे मे सही जानकारी देगा और मै सम-झती हूँ कि आप उसके बाद अपना इरादा बदल लेंगे।···मैं बहुत अभागी हूँ, इसलिए मेरे बाप ने मेरा नाम 'मिता' रखा है। बचपन मे मै अपनी माँ को खा गई ऐसा सभी कहते है। मेरी बातूनी मौसी का कहना है कि मेरे चरण जहाँ भी पड़ते है, वहाँ अनिष्ट अवश्य होता है, कहीं आपका यह "परिजात" सुगन्ध की जगह अंगारों की जलन न फैला दे, यह विचारणीय प्रश्न है। अस्तु।

मै आपको कुछ बातें बताना चाहती हूँ। पहली बात यह कि हमारे

कस्बे मे मेरे लिए उचित वर नही मिला, तब मेरे पिताजी मुझे यहाँ ले आए। यहाँ मेरे लायक कोई न कोई लडका मिल ही जाएगा ? यहाँ का एक पडोसी दूसरे पडोसी से एकदम अपरिचित है। उन्हे किसी की कोई चिंता नही। आज की ही बात है —सुबह-सुबह घर की मालकिन के पास हवेली की नौकरानी दमो आई थी। दमो को उसके बाप ने बडी निर्दयता से पीटा था। उसके अग-अग पर लकडियों के दाग चमक रहे थे। लेकिन हम लोगो को इस घटना का जरा भी पता नहीं लगा। मै उसके दागों को देखकर कांप उठी। मेरा मन करुणा से भर आया। लेकिन पडोसियो की यह गहरी व्यस्तता मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि मुझ जैसी अभागी लड़की को तभी यहाँ पर वर मिल सकेगा और मेरे बाप के सिर की चिंता खत्म हो जायगी।···पर आपके पत्रों ने एक नई समस्या को पैदा कर दिया है। मैंने आपके पहले पत्रो को एक कवि का प्रलाप ही समझा, पर आपकी मरने की धमकी ने मुझे विचलित कर दिया और मुझे आपको पत्रोत्तर देने के लिए बाध्य होना पड़ा। क्योंकि ऐसी जल्दी से घटने वाली घटनाएँ या तो फिल्मों में ही होती हैं या सस्ते उपन्यासों में ही, पर आपको देखकर मुझे कुछ नई अनुभूति हुई है कि ऐसी घटनाओं में सत्य अंश होता है। सच, अगर मै आपको पा जाऊँ तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगी। मै कल से बहुत खुश हूँ। मुझे भी आप पसद हैं। दोनों की पसंद का परिणाम क्या होगा, यह हमें पहले ही जान लेना चाहिये क्योंकि समाज बड़ा निर्दयी होता है। समाज हमारी ओर आँखें उठाए, उँगली दिखाये इसके पहले ही आपको साहस करके अपने पिताजी से हमारे विवाह के बारे में बात-चीत पक्की कर लेनी चाहिये। मै आपको एक बात और कहती हूँ कि मेरा बाप इस रिश्ते के लिए कभी ना नहीं करेगा।

अब मैं आपको अपने बारे में कुछ कहना चाहती हूँ। मैं तेज बुद्धि की एक साधारण पढ़ी लिखी लड़की हूँ। अंग्रेजी में मैं केवल सी एच आई एन टी ए" ही लिखना जानती हूँ। हाँ, घर के प्रत्येक काम में आप

मुझे बी० ए० और एम० ए० तक की उपाधियाँ बिना किसी हिचकिचाहट से दे सकते हैं। मुझमें एक और विशेषता है वह आपको आम लड़कियों में नहीं मिलेगी, वह है घर का आय के अनुसार बजट बनाना। उस बजट में अल्पबचत योजना भी शामिल है। आप कवि हैं और मैंने सुना है कि कवियों को चक-चक करने की बहुत आदत होती है। वे बात-बात में अपनी शायराना उक्तियाँ कहते रहते हैं जो मुझे कतई पसंद नहीं है। मुझे गंभीर आदमी अच्छे लगते है बकवादी और बातूनी नहीं। मैं बोलना चाहती ही नहीं। क्या आप ऐसी शुष्क लड़की को अपने सपनों की रानी बनाएँगे?

देखिये खत मुझे दोपहर तक मिल ही जाना चाहिये।

चिता——

× × ×

कमल ने उसी समय पत्र का उत्तर लिख दिया।

मेरी प्यारी चिता।

तुम्हारा पत्र पाकर मेरे मन मंदिर के बुझे हुए सहस्त्र दीप जल उठे। मुझे ऐसा लगा कि मेरा मन उन प्रसन्न लहरों पर अठखेलियाँ कर रहा है—जो कूल से प्रणय-स्पर्श करने के लिए आकुल रहती हैं। मैं आत्म-हत्या का विचार भी अब अपने मन में नही लाऊँगा। कौन ऐसा बदनसीब इन्सान होगा जो तुम्हारा प्रणय पाकर मरना चाहेगा? चिता मैंने तुम्हारा नाम गलती से गुलाब रख दिया है, अब अपनी भूल सुधार करता हूँ। तुम तो बहार हो, वीराने की बहार क्योंकि तुमने मेरे नीरस जीवन में बहार ला दी है। मेरे अरमानों में उस आग को जन्म दे दिया है जिस आग से दिल के फूल खिलते हैं।

मैं अपने बाप से आज ही अपने विवाह के बारे में कहूँगा। उन्हें मेरा चाहना मानना ही पड़ेगा। तुम्हें नहीं मालूम कि मैं अपने बाप का इकलौता बेटा हूँ और मेरी माँ का भी देहान्त हो चुका है, ऐसी स्थिति में वे मेरी बात टाल नहीं सकते।

मुझे पढ़ी लिखी लड़की की जरूरत ही नहीं है। प्रायः मेरे जैसे हृदय के युवक के लिए बहुत पढ़ी लिखी लड़की एक समस्या और सिर दर्द बन कर रह जाती है क्योंकि आज की शिक्षित लड़कियों में श्रद्धा और भक्ति की जगह तर्क और विचार की शक्ति अधिक होती है। तथा वे पतियों के कामों में खामियाँ निकाल कर यह बताना चाहती है कि हम विद्वान हैं, हम आप से हार नहीं खा सकती, वगैरह वगरह। यह होड़ भविष्य में विषाक्त वातावरण की सर्जना करती है और फिर तलाक तक की नौबत आती है। मैं तो इसे सिद्धान्त रूप स्वीकार करता हूँ कि कम पढ़ी लिखी पत्नी पति के लिए वरदान सिद्ध होती है।

और तुम्हारा निरन्तर मौन मेरे लिए महान वरदान ही समझो। तुम्हें यह कहते हुए मुझे संकोच हो रहा है (संकोच का कारण अपने मुँह अपनी तारीफ) कि मैं एक विशिष्ट गीतकार हूँ, हिन्दी मे मेरा कालेजो में शीर्ष स्थान रहता है। मैं गीतों की गेयता और मौलिकता पर विशेष ध्यान देता हूँ। और यह सब तभी संभव है जब मैं घंटों ही चिन्तन-मनन के सागर में गोते लगाता रहूँ। तुम शायद नहीं जानती, इस बाली उमरिया में बड़े-बड़े आलोचकों द्वारा प्रशंसा पत्र पा जाना भी एक सनसनी खेज घटना के बराबर की बात है।•••पर मेरी बहार, यह सब मेरी साधना, मेरे चिंतन मनन के कारण ही है और चिंतन मनन बिना एकांत एकाग्रता के संभव नहीं। तथा एक गृहस्थ के लिए यह तभी संभव हो सकते हैं जब उसकी पत्नी बातूनी न हो। सच मेरी बहार, तुम मेरे मनोकूल निकलती जा रही हो। अगर सारी दुनिया ही हमारा विरोध करेगी तो भी मैं तुम्हें प्राप्त करूँगा।

× × ×

कविजी,

आपका पत्र मिला। आपने जिस आत्मीयता और दृढ़ता का परिचय दिया है उससे मुझे बल और सम्बल दोनों मिल रहे हैं। मुझे पहले ऐसा महसूस होता था कि मुझे कभी भी अपने लिए एक अच्छा

पति नहीं मिलेगा और मेरे बाप की यह चिंता सदा उसके सिर पर सवार रहेगी, और एक दिन विवश होकर वह इस अभागी को किसी बूढे, काले कलूटे और दीन-हीन के गले बांध कर सुख की सांस लेगा और मैं एक जानवर से अच्छा जीवन नहीं बिता पाऊँगी। पर अब मेरे मन के विश्वास बदल रहे हैं। मैं अभागी से सुभागी बन जाऊँगी। मुझे एक अच्छा वर सुन्दर पति मिल जाएगा।

अब मैं आपसे एक आखिरी सवाल पूछना चाहती हूँ। क्या आप शारीरिक सौन्दर्य को अधिक चाहते हैं या आत्मा की? मान लीजिए कल मुझे भयानक चेचक निकल आये और मैं बदसूरत हो जाऊँ। मेरा यह गोरा रंग, सुडौल-कपोल गहरे दागों से भर जायें या मुझे कोई ऐसी बीमारी लग जाय जिससे मेरा उफनता हुआ यौवन वर्षों से रुग्ण और बुढ़िया की तरह शांत व निर्जीव हो जाय, तो भी क्या आप मुझे इतना ही उत्तेजनापूर्ण प्यार करेंगे? मुझे इस सवाल का जवाब तुरन्त दीजिए।

—चिता—

× × ×

प्रिय बहार,

तुम्हारा सवाल काफी विचारपूर्ण है। आदमी के प्रेम के असली नकली रूप को प्रगट करने वाला है। आत्मिक और कायिक प्रेम में, मैं तो आत्मिक प्यार को ही सर्वोपरि मानता हूँ। इस प्रेम में स्थायित्व और त्याग की भावना रहती है। वासना से परे इस प्यार में दैविक मिलन की प्रेरणा का वास रहता है। प्राणी का प्यार इस पवित्र पथ पर अग्रसर होकर अमरत्व के साथ-साथ प्रेमी-प्रेमिका को भौतिक भावनाओं से ऊपर उठाकर उनमें देवत्व भरता है। जहाँ इस भावना से प्रेरित प्यार प्रगाढ़ होता है, वहाँ रूप-सौन्दर्य का महत्व शून्य के बराबर हो जाता है। मैं तुम्हें चाहता हूँ सो हूँ ही पर इससे भी अधिक चाहूँगा तुम्हारी आत्मा को। अब मेरी अधिक परीक्षा न लो। मैं अब यह बात

चुका हूँ—प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है। बस अब मैं अधिक देर तक इस गली का फासला नहीं सह सकता, तुम बोलती क्यों नहीं, एक बार तो पुकारो—मेरे कमल—

तुम्हारे सपनों का राजा
कमल कवि

... ...

कमलजी,

पत्र मिला, उत्तर दो दिन के बाद दे रही हूँ। यह रिश्ता हो, इसके पहले मैं आपको एक कटु सत्य से परिचित कराना चाहती हूँ। आप जैसे प्रसिद्ध गीतकार चिंतन-मननकारी आत्मिक-सौन्दर्य प्रेमी को मुझ जैसी नाकुछ लड़की ज्ञान-दान दे, यह शोभा तो नहीं देता, पर आप के भावों की मासूमियत पर मुझे रहम आ रहा है। मैं चाहती हूँ कि हमारा यह आत्मिक प्यार सच्चाई से और मुखर हो तथा उसे चाँद सूरज की उम्र लगे। गलतफहमी, छल-कपट और किसी रहस्य का रहना प्यार के उम्र को कम कर देता है और शेष जीवन में जहर और घृणा भर देता है। मैं आप से ऐसी आशा रखती हूँ कि यह कटु सत्य आपके हृदय प्यार में कमी नहीं आने देगा और नहीं आप अपने आदर्शों से हटेंगे।

मुझे अब पूरा विश्वास हो गया है कि मैं और आप विवाह के गठ-बंधन में बँध ही जाएँगे। इस मधुर कल्पना में मैं डूबी जा रही हूँ। भविष्य के सुन्दर सुखद सपने मेरे समक्ष खड़े हैं। प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि मेरे वे सपने साकार हो। हाँ, मैं आपको एक गंभीर रहस्य से परिचित कराने की बात कह रही थी क्योंकि इस रहस्य के उद्घाटन में सहयोग दे रहे हैं आपके बुलन्द आशीर्वाद विचार और आपका दृढ़ निश्चय।

यह सही है कि मेरा प्रेम आपके चिंतन मनन में ऐसा चिर सहयोग देगा कि आपकी कवितायें एक दिन विश्व-व्यापी ख्याति अर्जित कर

लेगी। मैं आपसे जीवन भर नही बोलूंगी। आप यह अच्छी तरह जानते है कि मैं इसी बरामदे मे मौन बैठी रहती हूँ। क्यो ? देखिए आप अपने वायदो से न डिग जाइयेगा ? वस्तुत. मैं जन्म से गूगी हूँ। मै एक शब्द भी नही बोल सकती। अरे हाँ मै बहरी भी हूँ। सकेत और होठो की गति से मै आपकी बात तुरन्त समझ जाऊँगी, यह मेरे अभ्यास की बात है। मै यहाँ आई हूँ या मुझे लाया गया है, वह भी सिर्फ इसलिये कि मेरा यहाँ विवाह इस रहस्य को छुपा कर किसी से कर दिया जाय अथवा किसी को रुपये देकर मुझे बाँझ गाय की तरह घर से निकाल दिया जाय, पर आपके आत्मिक प्यार की बात सुनकर मैं इन सभी भयो से मुक्त हूँ और मुझे विश्वास है कि आप शीघ्र ही अपने पिताजी को पूछ कर या समाज मे इंकलाब करके मुझे प्राप्त करेंगे ? क्योंकि कवि लोग जन्मजात क्रान्तिकारी होते है।

मैं आपको एक बार और विश्वास दिला रही हूँ कि आपकी यह गूंगी और बहरी प्रेमिका सम्पूर्ण नारीत्व व सतीत्व के साथ आपकी उम्र भर सेवा करेगी।

--चित्रा-

× × ×

इस पत्र के पाते ही कवि कमल ने बरामदे मे बैठना बन्द कर दिया। और तो और, वह चंद दिनों के लिए कवि सम्मेलन का बहाना बनाकर बाहर चला गया। वह बार-बार ईश्वर को कोस रहा था उसने इतनी रूपवती लड़की को ऐसा अभिशाप क्यो दिया। वह सोचने लगा कि वह ऐसी युवती को कभी ग्रहण नही कर सकता जो गूंगी और बहरी है। अब वह वापस लौटेगा तब तक यह चली भी जावेगी।

और पन्द्रह दिनो के बाद जब वह वापस लौटा तब सामने घर खाली था। हाँ, तोरण द्वार पर ऐसे चिन्ह अवश्य मौजूद थे जिससे इस बात का सहजता से पता लग जाता था कि इस घर में विवाह हुआ है। यह सब देखकर उसके मन को अत्यन्त संतोष हुआ।

× × ×

कवि कमल अपने कमरे में गया। पत्र पढ़ने लगा। उसमें एक कुंकम पत्रिका भी थी। उसने पहले नीचे का पता पढ़ा। सामने वाली चिंता की ही कुंकम पत्रिका थी। लिखा था—दर्शन शास्त्र के प्रकांड विद्वान प्रोफेसर दयाशंकर की सुपुत्री कुमारी गरिमा बी० ए० का विवाह स्थानीय प्रोफेसर यदुनाथ के सुपुत्र श्री विश्वनाथ से दिनांक ५–५–५६ को सम्बन्ध होने जा रहा है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस शुभ काम में सपरिवार पधार कर कृतार्थ करें—

कमल को चक्कर आ गया। कुछ देर तक वह बुत की तरह बैठा रहा। अन्त में वह उठा और अपने पिता के पास गया। पिता से उसने पूछा, "क्या वह लड़की गूंगी और बहरी थी?"

"कौन सी?"

"जिसका सामने वाले घर में विवाह हुआ था?"

"पता नहीं। मैंने उसे बोलते कभी नहीं देखा और कुछ वे लोग किसी से बातचीत भी नहीं करते थे। पिता ने उस पर नजरें जमा कर कहा, "पर तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो?"

"यूं ही।"

बड़ी विकट स्थिति थी कवि कमल की। विश्वनाथ उसका निकटतम का तो नहीं, दोस्त अवश्य था। वह साहस करके उसके यहाँ गया।

"क्या उसे धोखा दिया गया है," उसने मन में सोचा। उसने बाहर से आवाज लगाई। विश्वनाथ आया। पूछा, तुम आज कैसे आये?

"बधाई देने। मैं किसी कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिये बाहर चला गया था।"

"आओ, आओ, तुम्हारी अपनी भाभी से मिलाऊँ।"

कवि के पाँव जमीन से चिपक गये। कमल सहमता-सहमता सा ऊपर चला। कमरे में बैठ गया। उसकी उत्सुकता बढ़ती गई।

"मैं अभी तुम्हारी भाभी को बुला कर लाता हूँ।" वह बाहर गया

और उसे बुला लाया।

"आह ! नाईलॉन की साड़ी में यह अप्सरा से कम नहीं लगती है, कमल ने मन ही मन में कहा, यह गूंगी बहरी······!"

"आप श्रीमती विश्वनाथ सरिता हैं, और यह है मेरे दोस्त कवि कमल !"

"नमस्ते। और सुनिये, इन्होंने हमें धोखा तो नहीं दिया ?" सरिता बनाम चित्रा ने कहा—

"नहीं।" विश्वनाथ ने कहा। कमल स्तब्ध सा उसे देखने लगा।

"फिर इन्हे कहिये कि ये मेरे वे प्रेम पत्र मुझे लौटा दे जो मैंने इन्हें हाल ही मे लिखे है ? मै उन्हें अपनी नई कहानी गूंगी लड़की में प्रयोग करूँगी।"

विश्वनाथ ने विस्मय होकर पूछा, "कौन से प्रेम पत्र ?"

सरिता ने पूरा किस्सा सुनाया कि हजरत किस तरह उसके पीछे दीवाना हुए थे और मरने जा रहे थे। पूरा किस्सा सुनकर विश्वनाथ खिलखिला कर हँस पड़ा। कमल का मानो खून सूख गया। वह टूटते हुए स्वर में बोला, "आप मुझे क्षमा कर दीजिये।"

विश्वनाथ ने खिलखिलाकर कहा, "यह शुरू से ही ऐसी नटखट और शैतान रही है। आज-कल के मजनुओं, फरहादों, रोमियों को यह खूब सबक देती है। मेरी तो इसने अग्नि परीक्षायें······।"

बीच में सरिता ने कहा, "मैं चाय लेकर अभी आयी।"

"क्या यह सरिता लेखिका है।" उसने मन ही मन कहा, "जिसकी कहानियाँ इधर खूब छप रही हैं।" और उसके भाल पर पसीना चमक उठा।

× × ×

पत्थर में पानी

बांके की सजा खत्म हो गई। उसे मुक्त कर दिया गया। दस वर्ष के लम्बे कैदी जीवन के बाद आज वह उस संसार में वापस आ रहा था, जिससे वह एक दिन हत्या के अपराध में वंचित कर दिया गया था। उसने हत्या की थी, एक सेठ की, प्रसिद्ध गुण्डे के साथ। फलस्वरूप उसे दस वर्ष की सख्त सजा मिली थी।

गत दस वर्षों में उसने जेल-जीवन के खट्टे-कड़वे अनुभव प्राप्त किए। उसने गलीचा बनाना सीखा। पहले-पहल डंडे भी खाए, क्योंकि वह अपनी कठोर और झगड़ालू मनोवृत्ति पर सहजता से अधिकार नहीं कर पाया था। बाद में उस की प्रकृति घोर एकांत और प्रतिबन्धों के कारण अन्तर्मुख होती गई और वह एक भद्र व्यक्ति बनने लगा।

कैद से बाहर निकलते ही उसने एक अंगड़ाई ली। अपने श्मश्रुयुक्त चेहरे पर हाथ फेरा और खुले आसमान की ओर ताका। उसकी दृष्टि क्षण भर के लिए नीले आकाश पर जम गई। कपास के खिलौने की तरह छोटे-छोटे मेघ-खण्ड क्षितिज के पश्चिमी किनारे पर तैर रहे थे। तत्पश्चात् उसने जेल के सामने से निकलती लम्बी सड़क पर दृष्टि जमा दी।

एक युवती नयनों में अश्रु लिए उसके समीप खड़ी थी। उसके साथ सात-आठ साल का बच्चा था। बच्चा मैले और

फटे कपड़े पहने हुए था। युवती के बाल अस्त-व्यस्त और जंगली घास की तरह कठोर थे। उसके चेहरे पर व्यथा की घनीभूत रेखाएँ दौड़ रही थी। उसके दो अश्रु जैसे ही कपोलों पर बहे, वैसे ही उसके अधरों पर मुस्कान थिरक उठी। अश्रुभरी मुस्कान। बाके अप्रतिभ-सा उसे देखने लगा। वह युवती भागी। उसने पीछे घूमकर देखा—वह एक कैदी के गले से लिपट रही थी। दोनो के मुख अश्रुप्लावित हो उठे।

युवती कह रही थी—"मैं दो रातो से सो नही सकी, विष्णु के बापू। लगता था—तुम अब आए; अब आए। देखो न, अपना विष्णु चौथी क्लास में पास भी हो गया है।"

युवक रोता रहा। वह एक क्लर्क था, किसी प्राइवेट कम्पनी मे किसी गबन के मामले मे उसे चार वर्ष की सजा हुई थी।

बाके की आँखे भी सजल हो उठी।

उसे रूपली की याद हो आई। क्या उसकी भी रूपली इसी बेचैनी से उसका इन्तजार करती होगी। तब वह थोड़ी दूर पर स्थित एक वृक्ष की छाया मे खड़ा हो गया। उसके स्मृति-पटल पर एक गेहुएँ रंग की दुल-हिन का चेहरा उभर गया। एक मासूम लड़की। उसकी दो आँखे—काली-काली, बड़ी-बड़ी। उसकी खनकती चूड़ियाँ और उसकी बजती पैजनियाँ।

जेल से उनका गाँव दस मील दूर था। वह हवा की तरह चल पड़ा। अनन्त के यात्री की तरह घड़ी भर विश्राम किए बिना। दिन ढलते वह गाँव की सीमा के पास पहुँच गया। पत्नी के मिलने की उत्कंठा ने उसको भूख और प्यास को भी भगा दिया था।

किन्तु गाँव की सीमा पर जाते ही उसके पाँव ठिठक गए। उसके अन्तस में पश्चाताप का तूफान सा उठा। उसके समक्ष दो सूखे-सूखे चेहरे नाच उठे। दो प्यासी-प्यासी और बुझी-बुझी आँखें बिल्ली की आँखों की तरह चमक उठी। नाच उठी—एक झोंपड़ी जिसके तिनके अस्त-व्यस्त थे, जिसमें गन्दगी का साम्राज्य रहता था जिसमें तीज-त्यौहार ही दीपक

जलता था। शेष समय जहाँ अन्धेरा-ही-अन्धेरा छाया रहता था। उस अन्धेरे में एक स्मृति उभर आई। बहुत समय पुरानी बात है—

"माँ !"

"क्या है ?"

"बहू कहाँ है !"

"क्यों ?"

"मैं पूछता हूँ, बहू कहाँ है !"—बाँके शराब के नशे में धुत था। उसका सारा शरीर काँप रहा था। पाँव लड़खड़ा रहे थे।

"क्यों ?"

"जवाब नहीं देती हो, क्यों-क्या लगा रखी है। बताती है या मैं...।"—और उसने झोंपड़ी के मिट्टी बर्तनों को तोड़ना शुरू कर दिया था।

माँ विह्वल हो उठी थी। तड़पकर बोली थी—"ओ निपूते, राम-सा पीर तेरी कुबुद्धि को ठीक क्यों नहीं करता। तूने घर की एक-एक चीज बेच दी है। माँ के नाक का काँटा भी नहीं रखा। बेचारी बहू के हाथ की चूड़ियाँ तो रहने दे ?"

वह राक्षस की तरह गर्जा—"बता न कलमुँही, तेरी बहू कहाँ है ?"

"नहीं बताऊँगी।"

"नहीं बताएगी।"—उसने एक ठोकर से पानी का मटका फोड़ दिया था। माँ क्रोध में भर उठी थी। पर वह आवारा बेटे से बहुत आतंकित भी थी, इसलिए उसने अपने हाथों से अपने को पीटना शुरू कर दिया था और वह जोर से चिल्लाने लगी थी।

सारा हरिजन मोहल्ला इकट्ठा हो गया। चमारों के पंच आसू ने बाँके को समझाना चाहा पर बाँके ने उसे जोर से धक्का देकर कहा—"साला पंच का बच्चा, एक ही घूंसे में पंचे को नम्बर कर दूँगा।"

आसू बेचारा गिरता-गिरता बचा। फिर भी झोंपड़ी के तिनके उसकी बाईं बाँह में चुभ ही गए। वह बड़बड़ाता हुआ उठा था—"यह चमार वंश में राक्षस पैदा हो गया है।"

वह इधर चला ही था कि रूपली आ गई थी। रूपली ने आते ही ज्यों ही विकराल-मूर्ति बांके को देखा, त्यों ही उसके प्राण सूख गए। वह पलट कर वापस भागी। बांके ने उसे देख लिया और उसने उसका पीछा किया।

रूपली उसकी पकड़ में आ गई थी। उसने रूपली के बाल पकड़े और उसे गंदी गालियां निकालने लगा था।

"चूड़ियां दे।"

"नहीं दूंगी। चार चांदी की चूड़ियां मेरे सुहाग की निशानी है।"

"सुहाग की बच्ची, देती है या......।"

रूपली ने उसे धक्का दिया और फिरा भागी थी। अब बांके रोष व घृणा से भर उठा। उसने लपक कर अपनी बलिष्ठ बांहों से रूपली को उठाया और पटक दिया। रूपली के मुख से खून बह उठा। वह अचेत हो गई। भीड़ जोर से चिल्लाई, मर गई, बेचारी मर गई।

और सचमुच बांके घबरा उठा था। उसका नशा एकदम उतर गया था और वह वहां से भागा था। भागा तो कभी वापस गया ही नहीं। उसे यह तो मालूम पड़ गया था कि रूपली मरी नहीं है, किन्तु वह बदमाशों के दल में शामिल हो गया, फलस्वरूप एक हत्या के अभियोग में उसे दस वर्ष का कारावास हो गया था।

बांके बढ़ते अन्धेरे को देख रहा था। उसकी आंखें आज करुणा से भरी थीं। उसकी मन की नसें दुःख के कारण टूट जाना चाहती थीं। सचमुच उसने अपनी पत्नी को पत्नी नहीं समझा, मां को मां और बाप को बाप नहीं समझा।

फिर आज वह क्या मुंह लेकर घर जाएगा? जाएगा, वह अब एक अच्छे इन्सान की तरह जिएगा। वह गलीचे बना-बना कर बेच कर सबको सुख देगा। अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित करेगा।

अन्धेरा गहरा होता जा रहा था।

वह गांव में घुसा। झोंपड़ों की जगह नए घर बन गए थे। गंदगी

से भरा-पूरा मोहल्ला साफ-सुथरा हो गया था। बच्चे एक गैस की लालटेन के नीचे पढ़ रहे थे। बांके ने उन्हे स्नेह भरी दृष्टि से देखा और आगे बढ़ गया।

'यही तो मेरा झोपड़ा था।"—उसने मकानो के बीच खाली जगह को देखकर मन-ही-मन कहा। वह विमूढ़-सा बहुत देर तक वही खड़ा रहा। वह अपलक अन्धेरे मे घरबों सा अस्तित्व बताते झोपड़े के घास-फूस को निहारता रहा। सोचता रहा—रूपली उसे देखते ही उसके गले से लिपट जाएगी। उसकी बाहे उसके गले में होंगी और पुचकार-पुचकार कहेगा, "न रो पगली, अब मै तुझे छोड़ कर कही भी नही जाऊँगा। अब मैं बुराइयाँ छोड़कर आया हूँ।" वह रोना बन्द नही करेगी। तब वह प्यार से उसके अंग-अंग को भिगो देगा।

वह अन्धेरे में प्रेतात्मा-सा लगा रहा। फिर वह बैठ गया और जमीन पर हाथ फेरने लगा। कुछ बिखरे हुए तिनकों को इकट्ठा किया। अन्धेरे में उनको देखने का असफल प्रयास करने लगा। उसने सोचा—शायद वे सभी नई बस्ती में चले गए है। सरकार ने हरिजनों को नए घर बना कर जो दिए है।

वह वहाँ से चला। नए घरों में दीपक जल उठे थे। एक बूढ़ी स्त्री अपने बच्चे को पढ़ने के लिए डांट रही थी। बांके को अपनी माँ याद हो आई। उसकी माँ उसे देखते ही चीख पड़ेगी। कहेगी, "मेरे सरवण मेरे राम, तू मुझे निरभागी बना कर कहाँ चला गया था?" बांके की आँखें भर आईं। उसने अपनी हथेली से अपने आँसुओं को पोंछा। लम्बा साँस खींच कर पुनः विचारो में खो गया, "पर मैं माँ के सामने अपनी रूपली को बाहों में कैसे भरूँगा!"

अचानक वह एक युवक से आ टकराया।

"कौन हो तुम?" बाँके ने पूछा।

"माधव।"

"अरे माधव तुम!"—बांके ने विस्मय पूछा—"मुझे नहीं पहचाना,

मैं हूँ बाँके ।"

"अरे बाँके सुना था तुझे तो जेल हो गई थी । तूने किसी की हत्या कर दी थी ?"

"हाँ माधव, पर अब मैं एक अच्छा आदमी बन गया हूँ । अपने पाप का प्रायश्चित करने आया हूँ । सुन तो, मेरा घर कहाँ है ? मेरी माँ, मेरे बापू और मेरी बहू कहाँ है ?"

माधव नहीं बोला ।

"तू चुप क्यों है ?"

माधव ने अपनी गर्दन घुमाली । अन्धेरे के कारण वह उसके चेहरे के भाव नहीं पढ पाया ।

"तू बोलता क्यों नहीं ? माधव, तुझे मेरी कसम है, जल्दी से बता, वे सब कहाँ है ?" बाँके काफी उत्तेजित हो गया था ।

"बात यह है बांके, तेरे माँ-बाप पपीहे की तरह तेरा नाम रटते-रटते चल बसे । आखिरी साँस तक उनकी जबान पर तेरा ही नाम था ।"

"माधव !" आर्तनाद कर उठा बाँके ।

"रही रूपली, वह पन्ना के घर चली गई । बड़े आनन्द में है । पन्ना का घर शहर के बाहर जो नई बस्ती सी बसी है, वहीं है, यही तीन- चार मील दूर ।"

माधव चला गया । बाँके निर्जीव सा हो गया । उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया । उसकी चेतना लुप्त-सी हो गई । वह वहीं पर बैठ गया, बैठा रहा—अनेक क्षण । बाद में उठा और आकाश की ओर देख कर उसने प्रतिज्ञा सी की—मैं उस बेवफा की बोटी-बोटी को काट कर चीलों को डाल दूंगा ।

उसने बड़ी बेचैनी से रात गुजारी । कभी-कभी क्षण-दो-क्षण के लिए उसकी आँख भी लग जाती थीं । पर जैसे ही वह जागता वैसे ही उसके सिर पर खून सवार हो जाता था ।

आखिर सुबह हुई ।

सूर्य देवता संसृति मे पीयूषवर्षिणी रश्मियाँ बिखेरने लगे। ओंके हरिजनों की नई बस्ती की ओर चला मन मे तूफान उठ रहा था और घृणा और हिंसा के भाव चेहरे पर अठखेलियाँ कर रहे थे। नेत्र रक्तिम हो उठे, युद्ध के रक्त पिपासु सिपाही की तरह। नई बस्ती के चौराहे के पास वह खड़ा रहा। बहुत बदल गयी है उसके लोगों की दशा।

"पन्ना कहाँ रहता है ?"—उसने जाते हुए एक व्यक्ति से पूछा।

"वह रहा चौथा मकान, सूखते हुए लाल लँहगे वाला ?" व्यक्ति गम्भीर हो गया, "पन्ना वैसे चार है। तुम कौन से पन्ना को पूछते हो ?"

"पन्ना रूपली !"……

"समझा, रूपली का खाविंद पन्ना, वही है उसका घर। अभी वह घर में ही है।"

वह उत्तेजित हो उठा। हिंस्र भाव उसके रक्त में लहरों की तरह दौड़ने लगे।

—सब औरत बेवफाई की नंगी तस्वीर होती है। किन्तु मैं उससे बदला लूँगा। उसे अपनी करनी का दण्ड दूँगा।

वह दो ही कदम आगे बढ़ा था कि उसे पन्ना आता हुआ दिखाई पड़ गया। वह ठिठक गया। यही है साला चोट्टा, जिस ने मुझ से मेरी रूपली को छीन लिया। मैं कम्बख्त का गला टीप दूँगा।

पन्ना के पीछे-पीछे अप्रत्याशित रूपली भागती हुई आई। उसके हाथ मे कपड़े मे लिपटी कुछ रोटियाँ थी।

"चम्पू के बापू, उतावली मे रोटियाँ ही भूले जा रहे हो।" उसके स्वर में कृत्रिम रोष था—"मैं देख न लेती तो दिन भर भूखों मरना पड़ता।"

"चम्पू की माँ, तेरे होते मुझे किसी की भी चिन्ता नही है। मैं बड़ा भागवान हूँ, नही तो तू मुझे कैसे मिलती ?"

"भागवान तो मैं हूँ, जिसे तेरे जैसा सीधा-साधा मर्द मिल गया, नहीं

तो वह निर्दयी बाके मुझे मार ही डालता। अच्छा हुआ कि वह राक्षस कहीं चला गया।"

"तुझे उसकी याद आती है?"

"नहीं। वह याद रखने जैसा आदमी ही नहीं था। हाँ, उसकी गालियाँ जरूर याद आती है, उसकी मार-पीट जरूर याद आती है। राम-सा पीर ने मुझ निरभागी को उससे छुड़ा कर सुभागी बना दिया।"

तभी बच्चे दौड़े-दौड़े आए। सबसे बड़ा बच्चा बोला—"माँ-माँ, बप्पू ने तेल गिरा दिया।"

"मैंने नहीं गिराया, तेल गिराया है, गोपू ने।"

"झूठ बोलता है!"

बच्चे आपस में लड़ पड़े।

शोरगुल मच गया।

पन्ना वहाँ से चला गया।

रूपली सभी बच्चों को लेकर चली।

बाके सम्मोहित-सा वहीं खड़ा रहा। हिंसा, द्वेष और प्रतिशोध वह सभी कुछ भूल गया। केवल पत्थर की प्रतिमा की तरह निष्प्राण और अचल खड़ा रहा।

जब रूपली उसकी दृष्टि से ओझल हो गई तब एक कँपकपी के साथ उसकी चेतना लौटी। प्रतिशोध की विषाक्त भावना पुनः जागृत हो उठी।

मैं इस छिनाल का मुँह नोंच लूँगा।--यह निश्चय कर वह एकदम आगे बढ़ा। नीचे पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा था। बांके आवेश में उसे नहीं देख सका। ठोकर खा गया। धड़ाम से गिर पड़ा। दाढ़ीयुक्त मुँह धूल-धूसरित हो गया। सिर से खून की पतली लकीर सी बह चली। आँखों के आगे धुँध-सी छाने लगी। मर्मान्तक पीड़ा की एक लहर उसके तन में दौड़ गई। वह करुणा से पुकार उठा—माँ!

रास्ता सूना था। थोड़ी ही दूर पर पानी के नल पर कुछ युवतियाँ जल भर रही थीं।

माँ की आवाज सुनकर उनका ध्यान बांके की ओर गया ।

एक ने कहा—"देख री रूपली, कोई बेचारा गिर गया है ।"

रूपली ने व्यग्रता से कहा—"हाँ-हां, चल री ।"

कहकर तीनो जनियाँ भागीं । रूपली ने आगे बढ़कर उसे उठाया । दाढ़ी से आच्छन्न चेहरा भी उसकी नजर से छिपा नहीं रह सका । वह पहचान गई । उसका खून बरफ की तरह जम गया । शरीर पसीने से भीग गया । जबान से निकल पड़ा, "हाय राम !"

"क्या करें ?"

"मेरे घर ले चलो, बेचारे को खाट पर सुला देंगे ।"

सहारा देकर उसे रूपली अपने घर ले आई । थोड़ी देर में दूसरी औरतें चली गयीं । बच्चे कौतूहल की भावना लिए आगुन्तक को देख रहे थे ।

रूपली ने उन्हें डाट कर भगा दिया । बच्चे उदास से चले गये । रूपली ने बांके का घाव धोया । वह उसे पंखा झलने लगी । धीरे-धीरे बांके ने आँखें खोलीं । रूपली उसके ललाट पर अपना खुरदरा हाथ फेर रही थी ।

बांके कुछ बोले ,इसके पहले ही रूपली ने कहा, "मैं बहुत सुखी हूँ, मेरे चार बच्चे हैं, मेरा अपना घर है, पति है । तू तो बांके मुझे मार कर ही चला गया था, पन्ना ने मुझे नया जीवन दिया है । उसने गली-गली की धूल नहीं छनने दिया, गले-गले का हार नहीं बनने दिया, अन्यथा मेरी क्या दुर्दशा होती ?" कहकर उसने लम्बा सांस लिया । उसकी दृष्टि शून्य की ओर लगी हुई थी, "अब तू फिर आ गया है । जरूर तू मेरे जीवन में जहर घोलेगा । पर तू इतना याद रखना कि मैं अपनी जान दे दूंगी पर आन नहीं दूंगी । मैं पन्ना को नहीं छोड़ सकती । बांके ! मैं हाथ जोड़ती हूँ,तू अपना नया घर बसा ले । मेरे हरे-भरे घर को मत उजाड़ ।"

बांके के नेत्र भीग आए । वह कष्ट से साथ उठा । उसकी मुद्रा पर कठोरता-कोमलता का विचित्र सामंजस्य था । वह घर के द्वार की ओर बढ़ता हुआ बोला, "तुम गलती पर हो । मैं बांके नहीं हूँ । मैं तो एक

भटका यात्री हूँ। तुमने मुझ पर दया की, इसके लिए मैं तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की मनौतियाँ मनाऊँगा। भगवान तुम्हें सुखी रखे। तुम्हारे सुखी जीवन को बनाए रखे।"

और बाँके करुणा से भीगा हुआ चल पड़ा रूपली ने ज़ोर से कहा—"बाँके, बाँके, रोटी तो खाते जाओ।"

परन्तु, बाँके ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। रूपली की आँखें भर आई।

मैं मर गई हूं

मैं ठगा-सा उसे एकटक देखता रहा। वह लम्बी कजरारी आंखें और कन्धों पर बेतरतीबी से नाचते हुए बाल। पहले की अपेक्षा थोड़ा-सा मोटा शरीर। और सभी स्त्रियों से भिन्न कूल्हों को मटकाकर एवं आकर्षणमय उत्तेजित चाल से चलकर सभी को मोहना।

वह क्षण प्रति क्षण मेरे करीब आती गयी।

चौरंगी, कलकत्ता की रंगीन चौरंगी। चहल-पहल। कोलाहल। विभिन्न चेहरों की संगम-स्थली।

अब वह मेरे बहुत करीब आ गयी थी। लेकिन उसका ध्यान सर्वथा कहीं और था, इसलिए वह मुझे नहीं देख पायी। उसकी नजर स्थिर थी—ठीक सामने। मैं बड़ी नाटकीयता से उसके सामने खड़ा हो गया। वह मुझे एक पल विमूढ़-सी देखती रही, फिर होठों पर मुस्कान बिखेरती हुई बोली, "अरे तुम ?" उसने मुझसे तपाक से हाथ मिलाया।

मैंने देखा कि वह स्थूल होने के साथ-साथ पीली भी पड़ रही है। उसकी आंखों के नीचे काली परछाइयां गहरी हो गई हैं और जो तनाव उसके चेहरे पर आंखों को टिकाए रहती थी वह शेष-चिन्ह के रूप में रह गई है।

वह एक तरस भरी मुस्कान बिखेर कर बोली, "तुम मेरी ब्यूटी देख रहे हो ? ब्यूटी हैज गॉन !" उसके चेहरे पर

उदासी की काली घटाएँ गहरे रूप में छा गईं। एक असह्य गंभीरता थी उस पर।

मैंने कहा, "चलो, चाय पी जाय।"

"चाय !" वह चौंक पड़ी। उसकी नजर भीड़ में खो गई। वह अपने आपसे जैसे बोल रही हो, इस तरह बोली, "मैं चाय नहीं पीती। चाय मुझे अच्छी नहीं लगती है।"

मेरी आँखें फिर उसके रूप पर जम गईं। वह बहुत ही बदल गई थी। उसका अलौकिक रूप विरूप हो गया था। और मेरी दृष्टि तैरती हुई उसके पेट पर जम गई। उसका पेट ठीक तीन बरस की तरह आज भी फूला हुआ था।

"क्या सोचने लगे ?" वह जरा तेज स्वर में बोली। मैं चौंक पड़ा। "तुमने चाय कब से छोड़ी ?"

"अभी से। सही बात यह है, यतीन्द्र कि मैं कुछ ड्रिंक करना चाहती हूँ। यदि तुम पिलाना चाहते हो तो···।" वह एकदम चुप हो गई।

"आओ, किसी 'बार' में चलें।"

"नहीं, हम अपने घर ही चलेंगे।"

हम दोनों शराब लेकर आ गये।

फ्री स्कूल स्ट्रीट की एक छोटी-सी गली में सीलिया का फ्लैट था। हम दोनों ने जैसे ही उसके फ्लैट में प्रवेश किया वैसे ही चार बच्चे चाँय-माँय चाँय-माँय करते हुए आ गए। पूरे चार बच्चे !···और एक पेट में ? बाबा रे बाबा ! एक कम्पन-सी दौड़ गई मेरे मन में।

तभी उसकी काली-कलूटी आया आ गई। आया के दाँत बहुत ही सफेद और उजले थे। उसने बच्चों को अपने काबू में किया। सबसे छोटा बच्चा जो चंद ही माह का था, अपना अँगूठा चूस रहा था—आया की गोद में।

सीलिया ने बिना झिझक के कहा, "दस रुपए दो, यतीन्द्र।" मैंने

रुपए दे दिए।

सीलिया ने आया को हुक्म कर दिया, "तुम बच्चों को बाहर ही खाना खिला आओ। मोड़वाला वह मुल्ला है न, उसे कहती जाना कि वह यहाँ दो आमलेट, पापड़ और कटा हुआ प्याज भेज दे। पैसे उसे तुम्हीं दे देना।"

वह बहुत ही तेजी से यह सब कह रही थी। कहकर वह तुरन्त ऊपर चढ़ती हुई बोली, "आया! ऊपर कोई न आने पाए, इसका ख्याल रहे।···आओ, यतीन्द्र।"

हम दोनों कमरे में आ गए। वह पीने की तैयारियाँ करने लगी।

मैं एक सोफे पर आराम से बैठ गया। कमरे में कोई भी परिवर्तन नहीं था। हाँ, कुछ पुराना अवश्य लग रहा था। मेरी दृष्टि कमरे में दौड़ती रही। एकाएक दृष्टि नासिर की तस्वीर पर रुकी, "नासिर कहाँ है?"

उसके चेहरे पर एक क्षण जोर की हलचल हुई और वह संयत स्वर में बोली, "वह जेल में है। उसे तीन बरस की सख्त सजा हो गई है।"

"क्यों?"

"सोने का तस्कर! दरअसल वह बड़ा ही बदनसीब है। अब तुम्हीं सोचो, तस्करी सभी करते हैं, पर पकड़ा प्रायः वही जाता है।"

"वह मेरे सामने आकर बैठ गई। शराब को गिलास में डालने लगी। हलके नीले रंग के छोटे-छोटे कलात्मक गिलास। आमलेट, पापड़ और प्याज भी आ गए। उसने उठकर सफेद की जगह रंगीन हलका प्रकाश कर दिया।

"यह तो तुम्हारे लिए बहुत बुरा हुआ!" मैंने सहानुभूति से कहा।

"हाँ, हुआ तो है ही।" उसने थोड़ी लापरवाही से कहा और मुझसे अपना गिलास टकराया। उसने एक बड़ा घूँट लिया। बोली, "नासिर जेल में है। तीन माह पहले उसे सजा हो गई थी। इस बार वह बुरी तरह से बरबाद हो गया है। मेरा यानी अपनी बीबी का भी खर्च अब

नहीं उठा सकता। इधर मेरी पीने की आदत भी बढ़ती जा रही है। क्या करूँ, यतीन्द्र, जब खुश और काबिल थी तब शराब मे वह मजा नही आता था जो अब फाकामस्ती में आता है।" उसने हाथ के अजीब झटके के साथ एक घूँट और लिया। आधा गिलास खाली हो गया, "चाहे हम इसे कुछ भी क्यों न कहें, पर जो चीज हमें मुश्किल से मिलती है, उसके प्रति हममे बहुत चाह पैदा हो जाती है।···"अब उसकी नजर मुझ पर जम गई। वह आमलेट के टुकड़े को अगले दाँतों के बीच दबा-कर बचपना-सा करने लगी। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था कि मैं उसे क्या कहूँ? तभी वह बोली, "तुम से कुछ नहीं छिपाऊँगी। छिपाऊँ क्या छिपाने को तबीयत भी नहीं हो रही है। इच्छा हो रही है कि सब कुछ कह दूँ।···आज पूरे बीस-पच्चीस दिन के बाद पीने को मिल रही है। छक कर पीऊँगी। तुम पीओ न? ले लो बड़ा घूँट।···मैं तुम्हें कह रही थी, इधर मुझ पर बड़ा कर्ज हो गया है। जब नासिर को जेल हुई थी, तब के बिल बाकी पड़े है। नासिर को मेरी हालत का पता है, पर वह मजबूर है। वर्ना उसमें इतनी हिम्मत है कि वह मेरे दुःख को दूर करने के लिए सभी कुछ कर सकता है। तुम यह अच्छी तरह जानते ही हो कि वह मुझे बेहद चाहता है। वह मेरे लिए सब कुछ कुर्बान कर सकता है। लेकिन अभी वह जेल में है।" उसने फिर गिलास भर दिया और बरफ के टुकड़े शराब में खोलने लगी। मैंने उसे टोका, "शराब कम पिया करो। शराब सेहत पर भी असर करती है, सीलिया! कितनी बेढंगी और बेडौल हो गई है तुम्हारी देह! कभी शीशे में अपना चेहरा देखती हो? गुलाबी रंग पीला हो गया है।" मैंने सिगरेट जला ली। गोलाकार धुआँ छोड़ता हुआ मैं फिर बोला, "और नासिर जैसा पढ़ा-लिखा आदमी, जो मार्डन कलचर का हामी है, इस तरह बच्चा क्यों पैदा कर रहा है, मैं नहीं समझ सकता। कम से कम उसे तो संतति-नियमन वाला ऑपरेशन करा ही लेना चाहिए।"

वह निष्कंप हो गई। नजर उसकी बोतल पर थी। उदास-उदास

और लम्बी-लम्बी रेखाएँ गहरी हो गईं। धीमे से बोली, "वह नहीं कराएगा।"

"लेकिन क्यों ?"

"इसलिए कि मैं उसके हाथ से न निकल जाऊँ।" अब उसकी नजर नासिर की तस्वीर पर थी। नशा आँखों में उतर उतरकर उसकी पलकों को भारी करने लगा था।

मुझे भी उन्माद-सा आने लगा। किन्तु मैं निरन्तर अपने मस्तिष्क पर जोर देकर अपनी चेतना को जागरूक किए हुए था। ललाट पर बल डाले हुए मैं बोला, "लगातार बच्चे पैदा करने का हाथ से निकल जाने से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? क्या तुम लगातार बच्चे पैदा करती रहोगी तो तुम उसे छोड़ कर नहीं जाओगी ? तुम अभी जा सकती हो !"

वह धीरे से हँस पड़ी, "तुम मेरी बात का मतलब नहीं समझे। न ही मैं इसे छोड़कर जाना चाहती हूँ और न ही मै उसके पास रहना चाहती हूँ। मेरी स्थिति अब पालतू जानवर की तरह है। जो मुझे हिफाजत मे रखेगा, उसे मैं लात नहीं मारूँगी। क्योंकि बीते दिनों ने मेरे 'खुद' के अस्तित्व को मिटा दिया है। और मै अपने बारे मे कुछ सोच भी नहीं सकती हूँ। जो ज्यादा ताकतवर है, वह मुझे किसी से भी छीन कर ले जा सकता है। मुझे हिफाजत चाहिए, हिफाजत।...ऐसी बातें मेरे चरित्र को गिराती जरूर हैं, पर मेरी स्थिति ठीक यही है। इधर मेरे रूप के प्यासों ने इस राह से गुजरना छोड़ दिया है, क्योंकि मैं अब कुतिया की तरह पिल्ला पैदा करती हूँ। इस फूले हुए पेट को देखकर आदमी के मन मे एक घिनौना ख्याल पैदा होता है और भोग की सभी इच्छाएँ ताश के महल की तरह टूट जाती हैं। इस फूले पेट की वजह से कन्डाक्टर अब्दुलगनी इस शहर को हमेशा के लिए छोड़कर चला गया। वह दो साल तक इसी फिक्र में रहा कि कब सीलिया खाली हो और कब मैं इसे लेकर उड़ूँ। चाहे यह बात कितनी कड़वी और जहरीली क्यों न हो लेकिन हमारे संस्कार, समाज और मजहब का हमारे ऊपर

से यदि कोप उठ जाय तो सभी मर्द औरत को एक वासनात्मक ही नजर से देखें और सभ्यता के पुतले इन्सान पल-भर मे अराजकता फैला दें। बहुत ही अजीब स्थिति है आदमी के मन की। रज्जाक के ये दोस्त—अब्दुल, नासिर और यह हनीफ – सब रज्जाक को इज्जत केवल मेरे लिए देते थे।"

"और यह हनीफ मेरे रूप का पक्का पुजारी था। मुझे बेहद चाहता था। जान देता था बेचारा। बेचारा इसलिए कि उसकी मेरे पीछे नासिर ने बड़ी दुर्गत की। नासिर दुनिया की हर ताकत से लड़ सकता है, मेरे खातिर।'''यतीन्द्र, रज्जाक के बाद मैं 'मैं' नही रही। मुझे लगा कि मैं मर चुकी हूँ। मेरी आत्मा इस अनुपम शरीर से निकल गई है और एक जीता जागता मांस का मैं पिंड मात्र हूँ।"

"रज्जाक!" वह इस नाम को लेकर घनीभूत व्यथा से घिर गई और उसकी नशीली आंखें थोड़े क्षण के लिए बन्द हो गईं और उसने गिलास को एक ओर करके मेज पर बायें गाल के बल अपनी गर्दन को रख दिया। तब उसका सारा शरीर ढीला-ढीला हो गया और उसके होंठ आतप्त के असीम अवसाद से चमक से उठे। दो बूंद आंसू भी उसके पलक-पुलिन को तोड़कर एक-दूसरे से मिलते हुए मेज पर गिर गए।

मैंने आत्मिक स्नेह से कहा "सीलिया, तुम्हे हिम्मत से काम लेना चाहिए। दुर्योग हर एक के जीवन में आते है।"

वह उठी और गट्-गट् शराब पीने लगी।

"यह शराब बहुत अच्छी चीज है। मैं इसके ईजाद करने वाले को तहेदिल से धन्यवाद देती हूँ। यही एक ऐसी चीज है जो कभी-कभी मुझमे मेरी आत्मा को थोड़ी देर के लिए वापस जगा देती है और मेरे सामने रज्जाक का चेहरा नाच जाता है।'''यतीन्द्र! रज्जाक को मैं जितना चाहती थी, उतना ही नासिर मुझे चाहता है। वह एक तरह से निहायत गिरा हुआ इन्सान है किन्तु वह मेरा कभी भी बुरा नहीं चाहता। जब रज्जाक से मेरा विवाह हुआ था और रज्जाक के मां-बाप से, उसे अपने घर

व धंधे से अलग कर दिया था तब नासिर ने उसे बड़ी मदद दी थी। उसके लिए जॉब ढूंढ कर दिया था और तुम नहीं जानते, उसने अपनी भावनाओं को सदा जब्त किए रखा। वह मुझे चाहता था पर उसका दोस्त रजाक इस रहस्य को कभी भी नहीं जान सका और न मैं ही। रजाक की मौत के बाद फिर मेरी जिन्दगी पहाड़ी नदी की तरह बही। टेढ़ी-मेढ़ी और कई घुमावदार घाटियों से होकर।

"हाँ तो, मेरे रूप के कारण रजाक को स्नेह-सहयोग देने वाले बहुत से मित्र मिल गए। सभी की गिद्ध-दृष्टि मुझ पर लगी थी। मेरे माँ-बाप भी मुझसे खुश नहीं थे। वे हैं हिन्दुस्तानी क्रिश्चियन, पर यूरोप को अपनी जन्मभूमि समझते हैं और उनका वश चले तो वे हिन्दुस्तान के कुत्तों तक का भी धर्म परिवर्तन करा दें। मैं हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी बोलती थी और मेरी माँ चाहती थी कि मैं केवल अंग्रेजी बोलूँ जो हमारी मातृभाषा है। दूसरा उनका आग्रह था कि मैं भले ही रजाक से शादी कर लूँ पर उसे ईसाई धर्म में लाकर। अगर मैंने इस अनुपम रूप-यौवन से अपने मजहब का एक भी इन्सान नहीं बनाया तो मैं प्रभु के प्रति वफादार नहीं कहलाऊँगी, क्योंकि यह रूप प्रभु का दिया हुआ है और मुझे इस रूप से उसके मजहब में एक बंदे को बढ़ाना ही चाहिए। किन्तु रजाक को यह मंजूर नहीं था। रजाक ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, "तुम अपने रूप से मुझे नाजायज बातों के लिए नहीं दबा सकतीं। मैं तुम्हें मुहब्बत जरूर करता हूँ पर मैंने उसके लिए अपना मजहब बदलने की तुम्हारी शर्त नहीं मानी थी ?"

"मैं क्या करती ? मैं भी उसे चाहती थी। वह एक अलबेला और अनोखा इन्सान था। मैंने उससे चुपचाप शादी कर ली। नतीजा यह निकला कि उसके लखपति माँ-बाप इसलिए उससे नाराज हो गये कि वे उसकी शादी अपने पेशावरी खानदान की किसी धनी लड़की से करना चाहते थे और मेरे माँ-बाप मुझसे इसलिए नाराज हो गये कि मैंने रजाक को ईसाई नहीं बनाया। पर हमें 'कोई दुख' नहीं था। उसके

कई दोस्त आ गये—नासिर, अब्दुलगनी, कन्ट्राक्टर, मुहम्मद हनीफ।" उसने बातों ही बातों दूसरा गिलास भी खाली कर दिया था और वह जैसे ही फिर शराब डालने को तैयार हुई, वैसे ही मैंने उसे रोक दिया।

"अब अधिक मत पियो। इतना पीना अच्छा नहीं।"

वह रुकी। उसने मेरी ओर देखा और सूखी मुस्कान के साथ वह बोली, "थोड़ा सा और ! अभी मेरी बात खत्म नहीं हुई है। आज मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगी। ऐसे ही सच्चे चरित्रों की तुम कथा लिखो। यही नया सर्जन होगा, नया क्रियेशन, एकदम नया। ऑरिजनल, मौलिक और अनोखा।" उसने आधा गिलास भरा और वह आमलेट का टुकड़ा खाने लगी। मैं उसे लेकर अपने आप से कई प्रश्न करता रहा। वह गिलास को इस तरह घूर रही जैसे वह उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहती हो। बोली, "हनीफ मुझ पर पूरी तरह आशिक हो गया। उस की हविस उसके मन में ही कुंडली मारे साँप की तरह फुत्कारती रही और एक दिन उसने 'भाभीजान' की आड़ में रज्जाक की गैरहाजिरी में मेरे साथ बलात्कार करने की चेष्टा की। मैं तड़प उठी, पर मजबूर थी। ऐसी स्थिति थी कि मैं कुछ कर नहीं सकी। वह चला गया। मैं गंभीर बनी बैठी रही। मुझे लगा कि यह सेक्स सबसे बलवान है। आदमी को किस हद तक गिरा देता है ? आदमी इसी की वजह से बहुरूपिया बनता है, अनेक रूपों की रचना करता है। उसका चरित्र अलिफ-लैला के जादू-भरे चमत्कारों सा अबूझ और अज्ञेय हो जाता है। कब वह किस रूप में धोखा दे जाय, नहीं कहा-समझा जा सकता। मैंने सारी कहानी रज्जाक के सामने रख दी। मैं नहीं जानती थी कि मेरे आँसुओं और इस कहानी का इतना भयानक अंत होगा। उसी रात रज्जाक ने भरी सड़क पर एक निर्दयी जल्लाद की तरह हनीफ को कत्ल कर दिया। हनीफ मर गया और रज्जाक को उम्र कैद की सजा हो गयी।

"सभी दोस्त मुझसे सहानुभूति प्रकट करने आये। अब मुझे मालूम हुआ कि गनी साहब मुझे अपनी बाँहों में लेने के लिए तरस रहे हैं और नासिर

बड़ी सफाई और चतुराई से मुझे पाना चाहता है। मुझे उन लोगों से बड़ी घृणा हुई। नफरत के मारे मैं उनसे कभी सीधे मुँह बोलना नहीं चाहती थी। लेकिन रजाक बरसों के बाद लौटेगा और रजाक के अब्बाजान मुझे जल्दी से जल्दी मरवाना चाहते थे। एक दो बार उन्होंने कुचेष्टाएँ भी करवायी। तब मुझे मजबूर होकर नासिर के घर जाना पड़ा। नासिर मुझे धीरज देता था। जीने की प्रेरणा देता था और अनेक इशारों से मुझे अहसास करता था कि वह उसे बेहद चाहता है। इधर गनी भी मुझसे बार-बार विनती करता था कि तुम मेरे साथ रहो। लेकिन मुझे नासिर का स्वभाव ज्यादा अच्छा लगता था। नासिर अपने आपको बिजनेसमैन बताता था। कहता था, "मैं विलायत का माल यहाँ इम्पोर्ट करता हूँ।" वह कुछ भी करता, हो मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। मुझे सिर्फ हिफाजत की जरूरत थी। रजाक के अब्बाजान नहीं चाहते कि मैं जिंदा रहकर उसकी दौलत की हिस्सेदार बनूँ। उन्होंने मेरे पीछे गुण्डे लगवाये, पर नासिर मेरी मजबूत ढाल बना रहा। उसने मुझे बचाये रखा।"

"लेकिन गनी ठेकेदार मुझ पर डोरे डालने लगा, वह बार-बार घर आने लगा। धीरे-धीरे वह प्यार की बातें करने लगा। मैंने नासिर से कहा, पर नासिर ने मेरे व्यक्तिगत मामले में बोलना अच्छा नहीं समझा। और मैं, यतीन्द्र, उसे तत्काल कोरा उत्तर नहीं दे सकी। मैं उसे नहीं कह सकी कि वह मुझसे ऐसी बातें न करे। शायद कोई स्वार्थ मेरे अव्यक्त मन में था कि यदि नासिर ने धोखा दे दिया तो मैं गनी···

"नासिर ने गनी को कुछ भी नहीं कहा। मुझे यह बुरा लगा। आखिर मैं उसकी हिफाजत में हूँ। लेकिन नासिर ने गनी को एक तस्कर के मामले में ऐसा फँसाया कि बेचारे को तीन बरस की सख्त सजा हो गयी।"

"अब नासिर अकेला था। वह आता था और मेरी जरूरतों के बारे में पूछ कर चला जाता था। जिस चीज की मुझे जरूरत होती थी उसे हाजिर

कर देता था। नये नये फैशन के गहने और कपड़े। मैं उसकी इस भल-मनसाहत से भी तंग आ गयी। उसके अहसानों एवं सीधेपन ने मुझे पागल कर दिया। और एक दिन मैंने उत्तेजित स्वर में पूछा, 'तुम्हें मेरे लिए इतना पैसा नहीं खर्च करना चाहिए।'

वह कुछ नहीं बोला।

मैं उसकी चुप्पी से अवश हो उठी। चीख कर बोली, "तुम बोलते क्यों नहीं। तुम मुझसे क्या चाहते हो?" उस समय मैं पागल सी हो गयी थी।

"वह नीले आकाश की ओर नजर दौड़ाता हुआ बोला, " मैं अपना फर्ज पूरा कर रहा हूं।"

"और मेरा फर्ज?" मैंने उसकी ओर देखा। उसकी आंखों में प्यास आग के सैलाब की तरह खामोश सोयी हुई थी। वह चला गया। उसकी मुझे चुप्पी पीड़ा देने लगी। एक ऐसा दर्द मुझे सताने लगा जिसे मैं नहीं समझ सकी। आखिर मैंने नासिर से कह दिया, "मैं तुमसे शादी करना चाहती हूँ।"

"नासिर ने पहले मेरी ओर देखा और बाद में उसने एकदम व्यग्रता से मेरे हाथ मजबूती से पकड़ लिये।"

"नासिर ने मुझसे कानूनी विवाह किया। विवाह की रात मुझे बड़ा दुख हुआ। हम अपने समाज की गन्दगी को छिपाकर भले ही अपनी सन्तानों के सामने आदर्श की बातें रखें, पर जो असलियत है, वह कभी नहीं छिप सकती। हम नेताओं, रहबरों और ज्ञान की पुस्तकों में राम, ईसा, मुहम्मद के महान चरित्रों को पढ़ते हैं, पर कौन ऐसा बना है? मानो जमाना खुद हमसे अपनी बातें मनवा रहा है। रज़ाक के सभी दोस्त मेरे रूप के लोभी! मुझे भाभी कहकर पुकारते थे और सभी मुझे अपनी महबूबा समझते थे। आदमी भीतर से वैसा ही आदिम बना हुआ है। पहले वह कपड़ों के बिना नंगा था और अब वह कपड़ों में नंगा है।"

शराब उसकी आंखों को मूंदने लगी थी। 'डोरस' में भी बहुत कम

शराब रह गयी थी। वह गर्दन हिलाकर बोली, "उस दिन नासिर बड़ा खुश था। वह झूम उठा। क्योंकि मैंने उससे कहा कि मैं माँ बननेवाली हूँ। उसने एक सांत्वना की साँस ली मानो उसे कोई अप्राप्य चीज मिल गयी हो। और इसके बाद लगातार बच्चे! गनी आया था। मैं माँ बनने वाली थी मेरे फूले हुए पेट को देख कर वह चला गया। एक बार वह फिर आया। कब मेरी गोद का बच्चा बड़ा हो और वह मुझे लेकर भागे। लेकिन मेरा पेट?" उसकी आँखें भर आयी। वह भर्राये स्वर मे बोली, 'मेरा बस यही उपयोग-उपभोग हुआ। लगातार बच्चे पैदा करते-करते मैं मर गयी। मेरा रूप, मेरी जवानी और मेरा आकर्षण सब मर गया। पर नासिर खुश है। बहुत ही खुश रहता है इन दिनों। क्योंकि उसका विश्वास है कि अब मुझे कोई भी लेकर नहीं भागेगा। गनी यह शहर छोड़कर चला गया। रजाक जब तक लौटेगा तब तक मेरे आगे छोटे-मोटे बच्चों की एक फौज होगी। मैं थकी-हारी बूढ़ी वेश्या की तरह बिलखायी पड़ूँगी—जिसके चेहरे पर झुर्रियाँ कीड़ों की तरह कुलबुलाती होंगी। मुँह भी शायद दाँतों के बिना बहुत ही भद्दा लगेगा।" उसने अपना मुँह मेज पर रख दिया। आँसू उसकी आँखों में से बहने लगे। एक बार सुबकियों ने भी जोर मारा। विगलित स्वर में बोली, "शायद तब भी मेरा यह पेट फूला हुआ होगा।" उसने रोते हुए अपना मुँह अपने हाथों में छुपा लिया।

मैं करुणा से आप्लावित हो गया। वह निर्जीव-सी उसी मुद्रा में पड़ी रही। नशा तेज हो रहा था। नीचे बच्चे आ गये थे। उनकी धीमी-धीमी आवाज आ रही थी। मैंने नीचे जाकर आया से कहा कि वह खाना ले आये। वह थोड़ी देर में खाना ले आयी। मैंने उससे खाने का अनुरोध किया। वह खाना खाती रही। बड़बड़ाती रही। रोती रही। मैं उसे निरन्तर ढाढ़स बंधाता रहा। हाथ धोते हुए उसने कहा, "मैं बहुत दुखी हूँ, यतीन्द्र, बहुत दुखी। यह शराब न हो तो मेरे दिल का असली दर्द भी न जागे और न मैं अपने आपकी सही हालत को पहचानूँ।

जब मैं यह शराब पीती हूँ तब मेरा जी मितलाने लगता है। कुछ बाहर आने को बेचैन, लगता है कि मैं कै कर दूं। कै नहीं होती है और मेरे दिल की घुटन बढ़ जाती है। मुझे यह स्थिति पसंद है। उस घुटन और उस दुख को मैं शाश्वत करना चाहती हूँ, इसलिए मैं शराब पीती हूँ। ···यतीन्द्र, तुम्हें क्या बताऊँ···" यह अपने पलंग पर अर्धशायित हो गयी। उसके फूले हुए पेट पर मेरी दृष्टि गयी। मन में अरुचि-सी जग गयी। तब मैंने अपनी दृष्टि उसके मुह पर जमा दी। वह दार्शनिक सी बोली, "मौत दो तरह की होती है। एक आम मौत—जिसके होते ही लोग इस देह को जला आते हैं, गाड़ आते हैं। और दूसरी मन की मौत—जिसे कोई नहीं जानता। वस्तुतः मैं एक तरह से मर गयी हूँ और जिंदगी के अजीब सम्मोह से आतंकित इस देह को संभाले हुए हूँ। शायद इन्सान के अचेतन मन में अपनी दुर्दशा और बरबादी के अन्तिम बिन्दु को देखने की भी एक तीव्रतम इच्छा होती हो! मुझमें वह इच्छा जरूर है, वर्ना मैं जिन्दा नहीं रहती। आज नासिर जेल में है। मुझे दिन प्रति दिन अभाव घेरते जा रहे हैं। जानती हूँ, एक दिन शेष पूँजी भी बिक जायेगी, ये फर्नीचर भी बिक जायेगा, ये बर्तन-भांडे भी बिक जायेंगे, तब मैं शराब कहाँ से पिऊँगी, इन बच्चों को रोटी कहाँ से लाकर दूँगा? बड़ी पीड़ादायक स्थिति होगी! फिर भी मैं जिंदा हूं, कोई अदृश्य शक्ति मुझे मरने नहीं देती। यही मेरे प्रश्न का उत्तर है कि इन्सान अपनी बरबादी के चरमबिन्दु को भी देखना चाहता है···ठीक खुशी के चरम-बिन्दु की तरह! सच, यह एक उसका भयानक पीड़ादायक सम्मोह है!"

वह निढाल हो गयी। अपने को संभालती हुई व्यंग, व्यथा और मिश्रित मुस्कान से स्वागत सा करती हुई वह उठी और बोली, "गुड नाइट। कल मिलेंगे, डियर यतीन्द्र!" और वह पलंग पर पड़ गयी। बड़बड़ाती रही। मैं उसे करुणाभरी दृष्टि से देखता हुआ बाहर निकल गया, यह सोचता हुआ कि सचमुच यह युग असह्य होता जा रहा है।

आँचल का विद्रोह

सूर्य मकान के सबसे ऊपरी कंगूरों को चूमता हुआ खिड़कियों से फिसल गया था। अमिता ने जम्हाई के साथ अँगड़ाई ली और अपने आँचल को व्यवस्थित करके खिड़की खोल दी। उसकी पलकें रात भर न सो सकने के कारण भारी थीं और उसकी छाया में दहकती हुई व्यथा स्पष्ट लक्षित हो रही थी। खिड़की के खुलते ही पवन का झोंका आया और उसकी एक अलक को छितरा गया। अलक कन्धे पर लहरा रही थी। उसने अन्यमनस्क भाव से उसे ठीक किया, फिर वह गुसलखाने में चली गयी। वहाँ ब्रश और मंजन पड़े थे। उन्हें देखते ही उसके तन-मन में कपकपी-सी छूट गयी। वह क्षण भर के लिए गुसलखाने से बाहर चली आयी। भय की हल्की रेखा उसके नयनों में खिंच गयी।

इसी ब्रश और मंजन को लेकर उसका अपने पति से झगड़ा हो गया था। कल ही की बात है कि सुबह-सुबह अमिता उठी थी। प्राची में आभा जरूर फूट चुकी थी पर सूर्य नहीं निकला था। उसने सीधे जाकर गुसलखाने में पति के ब्रश को इस्तेमाल कर लिया था। तभी उसका पति सुवेश आ गया। सुवेश आते ही उस पर बरस पड़ा, "तुम रही, गधी-की-गधी। हजार बार कह दिया है कि दूसरे का ब्रश कभी भी काम में

नहीं लाना चाहिए,पर तुम्हारी मोटी बुद्धि में यह बात नहीं जम सकती ।"

अमिता ने उसे अर्थभरी दृष्टि से देखा । वह दृष्टि उड़ती हुई, गुसलखाने के फव्वारे को चूमती हुई नल के चारों ओर छितरे छीटों पर क्षण भर रुकी और उस ब्रश पर आकर रुक गयी । चंद क्षण वह उसे देखती रही बाद मे वह बिना कोई उत्तर दिये ब्रश धोने लगी । ब्रश को साफ किया और यथास्थान रख दिया ।

ब्रश का रखना था कि सुधेश लपका । झटके के कारण उसके बाल का अगला गुच्छा ललाट पर आ गया । चेहरा आरक्त हो उठा । शरीर में हल्का-सा कंपन भी आ गया । उसने ब्रश को हाथ में लेकर उसे इस तरह देखा जिस तरह सिपाही हत्यारे के खून-भरे चाकू को देखता है । वह बोला, "इसे बाहर क्यों नहीं फेंकती ? क्या इससे सारे घर को मारेगी ? हजार बार कह दिया है कि तुम्हें पायरिया है ।"

और उसने ब्रश को बाहर फेंक दिया । झगड़ा यहीं पर खत्म नहीं हुआ । ब्रश को लेकर जो झगड़ा आरंभ हुआ था, उसने उनके तमाम जीवन के प्रछन्न पृष्ठों को खोल डाला । माँ-बाप, शिक्षा-अशिक्षा, रूप-विरूप, सभ्य असभ्य, कोई भी पहलू ऐसा नहीं बचा जिसको लेकर एक दूसरे को जलील न किया हो । उन विस्मृत घटनाओं का भी उल्लेख-विश्लेषण किया गया जिनकी उस प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं थी ।

जैसे-सुधेश ने अमिता से कहा, "जब मैं दिल्ली गया था तब तुम्हारे भाई ने मुझ से तमीज से बातचीत भी नहीं की थी और मुझे अकेला छोड़कर दफ्तर चला गया था, तुम हो तो उसी की बहिन ! तमीज तुम में आयेगी कहाँ से ?"

अमिता यह सुनकर तड़प उठी । अपने हाथों को झटका देती हुई वह बोली, "और मैं तो सातवीं रात को ही आपके द्वारा अपमानित हुई थी । मैं पूछती हूँ कि आप उस रात देर से क्यों आये थे । शराब में झूमते हुए आपने कितने अभिमान से कहा था कि डार्लिंग, मैं मिस गोपालन के साथ पार्टी में चला गया था ।'''मिस गोपालन, वहीं कुलटा

गोपालन ही तो है, जो सेठ बनारसीदास की रखैल है !

कुछ भी हो, पति-पत्नी के बीच का वातावरण विषाक्त होता गया गया और बाद मे सुवेश हार गया और उसी क्षण वह घर से बाहर चला गया।

अमिता के मन पर उसके रूठ कर चले जाने का कोई असर नहीं हुआ। वह सदा की तरह घरेलू कार्यों मे लगी रही। उसने पहले पहल घर को साफ किया, बाद में स्टोव जलाया और चाय बनाई। उसे ट्रे में रखी और चल पडी, सुवेश के कमरे की ओर। अभी वह बीच रास्ते में ही पहुँची थी कि वह चौंक पड़ी। ठंडी आह उसके मुंह से निकल गयी और व्यथाजनित घृणा की रेखा बिजली की तरह उसकी आँखों मे चमक कर बुझ गयी। उसने झटके के साथ अपनी गर्दन हिलायी और अपने कमरे मे आकर चाय पीने लगी। चाय के बाद उसने कुछ ताजगी का अनुभव किया। उसने उठकर स्नान किया और चुपचाप बिस्तरे पर लेट गयी। उसका मन वेदना के साथ-साथ सूनेपन से भर गया। वह सूना-पन उसकी आशा के सातो समुद्रों को पी गया और वह निर्जीव-सी पड़ी रही। सूर्य क्षितिज के होठों का रक्त पीकर भाग रहा था। किरणों की की आड़ी कतारें लोहे की सलाखो के बीच से आकर अमिता की पीठ पर फैल गयी। उनकी तपन ने उसके मन के सूनेपन को वस्तुस्थिति से भर दिया और वह दरवाजा बन्द करके वापस बैठ गयी।

धुँधलका कमरे में छा गया। पंखा बन्द था। श्रृंगार-मेज पर अमिता का सुवेश के साथ खिचवाया गया चित्र था। शादी के दो महीने बाद और आज से ग्यारह साल दस महीने पहले का। इस विगत वर्षों में उसका जीवन सुलगती हुई लकड़ी की तरह बीता। जलता हुआ, बुझा हुआ, ठहरा हुआ, और गतिमान। सुवेश ने कभी उसे प्यार नहीं किया। प्यार क्या, उसने समझौते की भी नीति को नहीं अपनाया। वह उससे क्षण-क्षण, पल-पल छोटी-छोटी बात को लेकर झगड़ा कर लिया करता था। झगड़े के रूप भयानक होते हैं। अमिता की सास बीच में आ जाती

और वह बात को बिना समझे-जाने अमिता की सात पीढ़ी को कोस देती। अमिता अपने क्रोध से घुटते मन को आँसू बहाकर समझा लेती। दीवार पर थूक कर चली जाती। उसकी गहरी घृणा से उसकी क्रोध की भावना तिलमिलाती और उसका मन हिंसक होकर उस पर झपटने को आतुर हो जाता,पर वह दीवार मे सिर टकराकर रह जाती। वह अपने दोनो हाथो से अपने सिर को पकड़कर झिंझोड देती। शिथिल होकर बैठ जाती। रोती रहती, बिलखती रहती। उसे लगता दुल्हिन के रूप मे उसका कोई अस्तित्व नही है। दुल्हिन को जो स्नेह-सम्मान मिलना चाहिये, वह उसे नही मिला। उसे लगता वह एक तरणी है, घृणा के सागर मे लहरो के मध्य डगमगाती।

बाद मे बात गाली-गलौज तक सीमित नही रही। कभी-कभी सुधेश उसे पीट भी देता था। तब घर का वातावरण विषाक्त हो जाता और नारकीय रोदन मे अमिता का मन अपने आपसे इतनी घृणा कर बैठता था कि वह आत्महत्या करने के लिए प्रेरित हो जाती थी।

दिन गुजरे। रातें चाँद की गोद मे अनत प्यार को जगाती हुई चली गयी। अदृश्य बन्धनो में बँधा उसका मन पति और सास से घृणा करते हुए भी प्रतिरोध करने में असमर्थ रहा। लेकिन यह सत्य था कि उन दोनों में स्नेह और अपनत्व नही था। इस पर भी सुधेश की आवश्यकताओ की पूर्ति वह अनिच्छा से करती रहती थी। उसे महसूस होता था जैसे वह एक घटिया किस्म की वेश्या है जो रोटी-कपड़े के पीछे अपने तन का सौदा करती है।

× × ×

सास ने दोपहर के ढलते-ढलते घर मे महाभारत शुरू कर दिया। वह एक चतुर जासूस की तरह सुधेश के 'वैरायटी-स्टोर्स' मे गयी। सुधेश बहुत व्यस्त था। बाप के समय से चली आ रही यह दूकान आजादी के बाद और भी फली-फूली। काफी आय थी। माँ को देखते ही वह सारा मामला समझ गया। उसने अपने कमरे में सिगरेट का कश खींचकर माँ

को इतना ही कहा, "मैं जहर खाकर मर जाऊँगा। तेरी बहू डायन है, वह मेरे रक्त की बूँद-बूँद पी जायगी। क्या तुम्हें संसार में दूसरी लड़की नही मिली थी जो इस हठी और शैतान को खोजकर लायी। चुप क्यों है?…बोलती क्यो नही? तुमने मेरी जिन्दगी को तबाह कर दिया!"

"आखिर बात क्या है" उसने अनजान बनते हुए कहा। इस समय उसकी मुद्रा नितान्त सहज थी और विस्मय से भौंहें टेढी हो गयी थीं।

"बात क्या हो सकती है। वह राड हे न, मुझे जिन्दा नही रहने देगी। घुला-घुलाकर मारेगी! पर मै अब जरूर दूसरी शादी करूँगा।"

माँ तुरन्त भाँप गयी कि मामला संगीन है। अतः उसने अपने आप को बिलकुल अनजान और निर्दोष बना लिया। उसने यह भी स्वीकार किया कि अगर उसके बाप की अंतिम इच्छा का ध्यान न होता तो वह यह रिश्ता कभी नही करती। भला कायस्थों में लड़कियों का कौन-सा अभाव है? यह तो ठहरी मैट्रिक। एम० ए०, बी० ए०, पास भी एक हजार लड़कियाँ मिल जाती हैं। और उसने अमिता को जी भर कर गालियाँ दी। गालियों के कारण वह अपने बेटे की थोड़ी सहानुभूति प्राप्त कर रही थी। उसका गुस्सा थोडा ठंडा पड़ गया और उसने उदास स्वर में कहा, "मैं उसके रहते घर नही जाऊँगा!"

"घर क्यों नहीं आयेगा। घर उस झगड़ालू का नही, मेरे पति का है। हाँ, तुम उससे बातचीत मत करना।"

सास ने वहा से लौटकर अमिता को खूब खली-कटी सुनायीं। आज अमिता भी भड़क उठी। दबी घृणा फूट पड़ी और जब सास ने उसे झगड़ालू कहा, तब अमिता अपने हाथ का गिलास जमीन पर पटककर बोली, "झगड़ालू मै नहीं, झगड़ालू है आपका लाडला।

"मेरे तो सात पीढ़ी में भी कोई झगड़ालू नही था।"

"और मेरी चौदहे पीढ़ी में भी कोई तीखे बोल बोलने वाला नहीं जन्मा।"

"रहने दे, रहने दे। क्या तेरे बाप ने तेरे चाचा को मकान के झगड़े

के लिए नहीं पीटा था ?"—सीधा और सच्चा आक्षेप था। तीर की तरह अमिता के हृदय पर लग गया। उसके अन्तस में तूफान उठ गया हो! पीड़ामय क्रोध था। वह फुफकारती हुई बोली —मेरे बाप ने लाख मेरे चाचा को पीटा हो पर तुम्हारे पति ने तो अपने भाई को जहर देकर मारा, ताकि वह सम्पत्ति का बँटवारा न करा सके।"

तीर से भी भयानक ये शब्द अग्नि-बाण सम थे। सास भारती चीख उठी—"चुप रह मुँहफटी!" और शांत निश्चल-सी खड़ी हो गई। उसका स्वर अवरुद्ध हो गया। पाप की छाया से पुतलियाँ भयानक लगने लगीं।

अमिता दीवार पर नजरें जमाए खड़ी थी। सास की मुद्रा कितनी भयंकर थी। यह उसने नहीं देखा। वह सिर्फ इतना जानती थी कि उसकी बात ने सास को परास्त कर दिया। सास की बोलती बन्द कर दी है। उसने अहम् से अपनी सास की ओर देखा। उसके अधरों पर अनायास ही कुटिल मुस्कान बिखर गई। उस मुस्कान ने आहुति में घी का काम कर दिया। सास की मनःस्थिति डाँवाडोल हो चुकी। वह अपना पाँव पटककर चिल्ला पड़ी—"दाँत निकालती है वेश्या की तरह! बेशर्म, बदतमीज!"

"सच्ची बात कड़वी लगती है।"

वह हवा की तरह अपने कमरे में आ गई।

उसकी सास भारती पत्थर की तरह खड़ी रही। वह अपने मन की निकृष्ट गालियों को जबान तक नहीं ला सकी। उसकी चेतना को उसके ही अन्तर की शक्तियों ने दबा दिया। वह पागल-सी, गूँगी-सी तड़प उठी।

थोड़ी देर के बाद वह अमिता के कमरे में गई। अमिता गहरी नींद में सोयी हुई थी। उसे लगा कि यह एकदम ढोंगी है। इतना झगड़ने के बाद ऐसी गहरी नींद। आदमी बेचैनी के मारे सो भी नहीं सकता। वह नीचे उतर आई।

साँझ का मटमैला आँचल फैल गया। अमिता आज अपने कमरे से नीचे नहीं उतरी। वह अभी तक सोई हुई थी जैसे आज उसके मन का विपुल संघर्ष खत्म हो गया है। पूरे युगान्त के बाद आज वह सुख की नींद सोई है। वर्षों से उसके थके तन-मन को सच्चा विश्राम मिला हो। कोलाहल-भरी भीतरी सृंसृति की नीरवता प्राप्त हुई हो।

भारती बड़ी देर तक उसकी प्रतीक्षा करती रही! नौकरानी ने साँझ के कार्यक्रम की प्रारम्भिक तैयारी कर दी थी। प्रारम्भिक तैयारियों के पश्चात् अमिता महाराजिन के साथ रसोई में प्रवेश कर जाती थी। सारा खाना बनाती थी। पति को गर्म फुलका खिलाना उसका धर्म था, चाहे पति रात को बारह बजे ही क्यों न लौटे। इसके विपरीत भारती खाना खाकर सो जाती थी। वर्षों से उसने गृहकार्य में तनिक भी सहयोग नहीं दिया था। आज जब अमिता को नीचे उतरते नहीं देखा तो वह कुछ घबराई, क्योंकि महाराजिन भी नहीं आई थी। एक बार वह फिर ऊपर गई पर अमिता को गहरी नींद में सोया हुआ पाया। उसका मन आशंका से भर गया। कहीं अमिता ने कुछ खा तो नहीं लिया। उसने सहमते-सहमते अपने बाएँ हाथ को आगे बढ़ाया और उसकी नाक के आगे रोक दिया—। नाक से गर्म साँस आ रही थी। उसने इतमिनान की साँस ली। नीचे आकर वह बैठ गई। जैसा कि हमेशा झगड़ा होता था और साँझ के आगमन के साथ ही वह झगड़ा समाप्त हो जाता था, पर आज स्थिति भिन्न थी। अमिता नीचे उतरने का नाम भी नहीं ले रही थी। साँझ का आँचल और गहरा हो गया। घरों के ऊपरी हिस्से धुंधलके में खो-से गए। तब भारती का रहा-सहा धैर्य जाता रहा। वह चूल्हे का ताप जरा भी नहीं सह सकी। झल्ला पड़ी। ज्वाला की काँपती परछाइयों में उसकी आकुलता स्पष्ट झलक रही थी। आखिर वह बाहर निकली और उसने काँच के गिलास को जोर से पटककर गिरा दिया। गिलास के टूटने की आवाज से आँगन गूँज उठा। टुकड़े छोटे-छोटे रूप में बिखर गए। किन्तु अमिता नीचे नहीं उतरी। वह आँखें मलती हुई

बाहर आई। लापरवाही से उसने नीचे की ओर देखा और फिर इत-मिनान से कमरे मे आकर वापस लेट गई।

आरती का मन नई भावना से शकित हो गया।

"आज रंग बदला हुआ है।"···उसने मन-ही-मन कहा, "हाँ, तो होता रहे। मै इसका माथा ठीक किए बिना थोड़े ही रहूँगी। आज फैसला होकर रहेगा!···जरूर होकर रहेगा।"

वह काम करती रही। सुवेश आया। तब तक उसका सारा शरीर पसीने में भीग गया था। आग के निरन्तर ताप के कारण उसके मुख का रंग ताँबे की तरह हो रहा था।

"माँ, अमिता कहाँ है?" सदा की तरह उसने पूछा। क्षण-भर के लिए वह अभ्यस्त प्राणी की तरह भूल गया था कि आज का झगड़ा सदा की अपेक्षा बहुत गम्भीर है। फिर उसका मस्तक संकोच से झुक गया। उसने अपने आपको बचाने के हेतु कहा - "कल से महाराजिन से खाना पकवा लिया करो। मै उसके हाथ का खा लूंगा।"

वह आज अपने कमरे में नहीं गया। नीचे ही कपड़े बदलने लगा। खाना उसने सिर्फ माँ के मन को कष्ट न पहुँचे इसलिए थोड़ा-सा खाया। बाद में वह सोने के लिए अलग कमरे में चला गया। वह अभी बिस्तरे पर लेटा ही था कि वह सोचने लगा कि उसे अमिता को सताने में क्या आनन्द मिलता है? हर रोज लड़ता है, हर रोज उसे प्रेम करता है। जरूर उसके मन में कुछ विकृति है, किसी को सताने में उसे आनन्द की उपलब्धि होती है? बेचारी अमिता! सच, उसके बिना मैं रह भी नहीं सकता।

तभी अमिता ने उसके कमरे में प्रवेश किया, अमिता के नयन प्रदीप्त थे और उसके चेहरे पर सदा की अपेक्षा आज अपूर्व धैर्य व गंभीरता विराज रही थी। एक ऐसा अनोखा आलोक जो मनुष्य के आन्तरिक आनन्द का प्रतीक हो सकता है। वह चुपचाप बैठ गई। उसने आहिस्ते-आहिस्ते कहा—मैं आज तुम्हें स्पष्ट रूप से कहने आई हूँ

एक बात ।

सुधेश ने प्रश्न-भरी दृष्टि से प्रमिता की ओर देखा ।

—मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ । मैंने भरपूर प्रयास किया, शायद यह प्रयास आपकी ओर से भी हुआ हो, किन्तु एक युग के बाद परिणाम यह निकला है कि हम आपस में एक सुखी दम्पत्ति नहीं बन सके । मुझे तुम पसन्द नहीं हो और तुम्हें मैं । कारण है मन की दूरी । मन की दूरी मन से ही भरी जा सकती है । पर हमारे मन की स्थितियाँ ऐसी रहीं कि वे दोनों जेल की चहारदीवारी में बन्द हैं और मजबूरी के कारण हँसते-रोते हैं, दुनियादारी निभाते हैं । अतः अब मैं सदा-सदा के लिए आपको छोड़कर जा रही हूँ । घुटन और भूख के डर से मैं ऐसा परवश जीवन-यापन नहीं कर सकती । इससे अच्छा है कि मैं किसी तरह उस एक क्षण को भी प्राप्त करूँ जो मेरे समस्त नारीत्व-सतीत्व को सुख-संतोष पहुँचा सके । जीवन बहुत बड़ा है और जीने के दायरे भी अनेक हैं । पता नहीं, इस बन्धन-मुक्ति की भावना और यह अदम्य साहस मुझमें आज से वर्षों पहले सुहागरात के दिन क्यों नहीं जागा ?···मुझे चाहिए था कि मैं आपसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद अग्नि के महामंत्रों की साक्षी में सम्पन्न अनुष्ठान के तुरन्त बाद ही कर लेती ताकि मेरे जीवन का एक युग व्यर्थ नहीं होता ! खैर, जबसे जागे, तभी सवेरा । हाँ, मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं आपकी प्रतिष्ठा पर कोई कीचड़ नहीं उछालूँगी ।

सुधेश बैठ गया । उसका ललाट पसीनों की बूँदों से चमक उठा । उसने इतना ही कहा, "तुम···तुम यह···"

—मैं ठीक कहती हूँ । यह बन्धन, यह सतीत्व-नारीत्व का नारा व्यर्थ है । व्यर्थ है, चरित्रवान बनकर आत्मा की सभी आशाओं व तृष्णाओं को मारना । आखिर यह सब क्यों, किस लिए ? आखिर हर कोई सुख चाहता है और सुख दोनों के समन्वय बिना नहीं । सुधेश बाबू ! शब्दों-मन्त्रों के बन्धनों की सार्थकता ही तभी है जब हमारी आत्माएँ तृप्त हों । मैं अभी जा रही हूँ । आप मुझे सहजता से भुला सकते हैं । शादी भी कर सकते

है क्योंकि मैं भी ऐसा ही निश्चित कदम उठाऊँगी। नमस्ते!"

एक सूटकेस के साथ अमिता धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर गई। सुधेश को लगा, पूरे एक युग के अत्याचारों का बदला अमिता ने उससे ले लिया है। उसे पराजय दे दी है। वह दौड़कर बोला, "नहीं अमिता, नहीं तुम मत जाओ।"

पर अमिता नही रुकी! "मैं जाऊँगी, आज से तुम्हारा मेरा रिश्ता खत्म!"

"पागल न बनो! अमिता! मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, देखो, पति-पत्नि का झगड़ा चलता ही रहता है। तुम तिल का ताड़ न बनाओ।"

"मैं इस जीवन से ऊब चुकी हूँ। मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ।"

' पर मैं तुम्हें जाने नही दूँगा। अमिता, अमिता···लोग क्या कहेंगे, तुम्हारी बीबी तुम्हें छोड़कर चली गई। भाग गई। मैं किसी को अपना मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा।

"और मैं भी इस तरह का पीड़ामय जीवन नहीं जी सकती।"

वह भोले बालक की तरह अपना अपराध स्वीकार करके बोला—"पता नहीं, मैं तुमसे झगड़ा क्यों करता? दरअसल मैं क्षमिवा हूँ। मुझे···एक बार···सिर्फ एक बार! आज मैं डर गया हूँ। अमिता···।—वह कुछ रुककर बोला—ये झगड़े हमारे जीवन से महत्वपूर्ण नहीं हैं। विराट जीवन के ये अच्छे-बुरे बिन्दु हैं जो हल्के-हल्के झोंकों से भी सूख जाते है, मिट जाते हैं।"

और सुधेश ने अमिता के हाथ को मजबूती से पकड़ लिया।

सुधा मुस्करा पड़ी। उसकी समझ में नहीं आया कि यह आदमी किस तरह का है? वह घर की सीढ़ियाँ वापस चढ़ती हुई सोच रही थी कि दुर्बलता के साथ इतनी दीनता क्यों? क्यों?···एक जलता प्रश्न उसके मन में तूफान की तरह घहराने लगा।

एक सीमा

१

बाजार 'कोटगेट' से बाहर निकलते ही भीड़ का ज्वार-सा आ गया। कारण समझते देर नहीं लगी। रेल का फाटक खुला होगा। जब भी सगुन सामने लेकर आता हूँ, यह बन्द ही मिलता है। दस-पन्द्रह मिनट तक खड़े रहो या साइकिल को कंधे पर लाद कर बड़ी कठिनता से उस ओर जाओ। कभी-कभी बड़ी झल्लाहट होती है किन्तु आज मैं सगुन लेकर नहीं आया। न मैंने भरी टोकरी वाली मालिन की प्रतीक्षा की और न मैंने छाजला भरी भंगिन की राह देखी। आज मैंने चौराहे पर पानी की पखाल का भी इन्तजार नहीं किया। बस, झट से साइकिल पर बैठा और सपाटे से पैडल घुमाता हुआ चल पड़ा।

और आज मुझे फाटक खुला मिला। भीड़ से बचने के लिए मैं एक पान की दूकान पर ठहर गया। जर्दा खाता हूँ इसलिए पान नहीं छूटता। हालाँकि दाँत पीले हो गये हैं। पान खाकर मैंने एक पल घड़ी पर दृष्टि डाली। सवा आठ हो चुके थे। मैंने अपनी रफ्तार और तेज कर दी। देखते-देखते मैं शिवशंकर के मकान के आगे था। अपनी आदत के अनुसार मैंने साइकिल की घंटी बजायी। दरवाजे की ओर देखा तो एक छाया अँधेरे में लोप होती मालूम हुई। मैंने अनुमान से पुकारा, 'शिवशंकर!'

गली मे अँधेरा था। शिवशकर के घर मे अँधेरा था। मैंने निरुद्देश्य उस छोटी-सी गली में दृष्टिपात किया और तारों भरे आकाश को देखने लगा।

एक छोटी-सी लडकी आयी। बोली, 'काका घर में नही है।'

शिवशकर के बेटे-बेटियाँ उसे काका ही कहते है। इस संबोधन में उन्होंने शिवशकर के भतीजों का अनुकरण किया है।

मैंने तुरन्त साइकिल को स्टैंड पर खड़ा किया और जरा गुस्से से बोला, 'और अभी भीतर कौन गया था?'

लडकी चुप रही।

मैं तेज स्वर मे बोला, 'मै आज उसको नही छोड़ूँगा। पूरा एक वर्ष हो रहा है। न ब्याज और न मूल। देखे वह कितनी देर चोरो की तरह छुपा रहता है। आज मै भी प्रण करके आया हूँ कि रात भर यही पर खड़ा रहूँगा।' और मै उसकी सीढियों पर बैठ गया।

दो-चार पडोसी आ गये थे। उन्होंने पूछ-ताछ की। मैंने उन्हे भी खरी-खरी सुनायी, कैसा जमाना आ गया है! अपने रुपयों से इसकी मरती हुई बीबी को बचाया था, उसका फल यह मुझे यह दे रहा है कि अपनी सूरत भी नही दिखाता। आखिर मैंने पैसे देकर कौन-सा गुनाह किया। एक तो पैसा दो, दूसरे दुश्मनी मोल लो।'

पडोसी लोग इधर-उधर की बातें करके चलते बने। मै बड़बड़ाता हुआ वही पर बैठ गया और बीड़ी सुलगा कर पीने लगा। अभी दस पल भी नही बीते थे कि मुझे किसी के कदमों की आहट सुनाई पड़ी। आहट के साथ लालटेन की मद्धिम रोशनी। मैंने जान-बूझकर उस ओर नही देखा। नीची गर्दन किये हुए बीड़ी पीता रहा।

'टीकूराम जी!' परिचित नारी कंठ-स्वर सुनाई पड़ा।

'देखो भौजाई, आज मैं कुछ करके ही जाऊँगा। मैं उसकी चाल-बाजी खूब समझता हूँ। तुम्हें भेजकर वह अपनी बला टाल लेता है। किन्तु मै भी यह फैसला करके आया हूँ कि उस मोंढू से आज जरूर मिलूँगा।'

भाभी ने विनीत स्वर में कहा, 'आप भीतर चलिए, यहाँ क्यों बैठे है ?'

मैने साइकिल को ताला लगाया और भाभी के पीछे हो लिया। इतनी देर के उपरान्त भाभी पर मेरी पहली बार नजर गयी। मोटी और मैली साड़ी पर लगे तरह-तरह के छींटे, एक हाथ में लालटेन और एक हाथ में सातवाँ बच्चा। सूखा-सूखा शरीर और गंदे पाँव। वह मेरे आगे-आगे पाँवों को नाप-नाप कर चल रही थी और मैं कुछ खोया-सा कदम उठा रहा था। भाभी का वह रंग और रूप मेरी आँखों के आगे सहसा नाच उठा। शिवशंकर की शादी में मैं भी सम्मिलित हुआ था। बड़ी धूम-धाम से बरात गयी थी। पानी की तरह रुपया खर्च हुआ था। तब मैं और शिवशंकर सहपाठी थे। पाँचवीं क्लास में पढ़ते थे। उम्र होगी यही तेरह-चौदह वर्ष।

चार वर्ष के बाद उसका 'टीका' हुआ था। हम दोनों ने खूब मौज-मजे किये थे। दुल्हन को घर ले आये थे। दुल्हन और शिवशंकर की उम्र बराबर ही थी।

तब भाभी नारायणी के अंग-अंग से सौंदर्य टपकता था। मोहल्ले की स्त्रियाँ उसका रूप-दर्शन करने के लिए जमा रहती थीं। हर कुँवारा गणगौर माता से यही प्रार्थना करता था कि ऐसी ही सोवणी-मोवणी बहू उन्हें मिले।

और शिवशंकर भी उस समय आकाश में उड़ता था। बाप की कमाई बहुत ही मुश्किल से रहती है। शिवशंकर पढ़ाई-लिखाई छोड़कर भाभी के रंग-रूप में रम गया। परिणाम यह निकला कि बाप ने उसे एक पंसारी की दुकान में काम-धंधा सीखने के लिए लगा दिया और उसे आश्वासन दिया कि वह जैसे ही इस धंधे में निपुण होगा वैसे ही उसे पंसारी की एक दुकान खुलवा दी जायेगी।

पर विधि की विडम्बना कुछ और ही थी। साल बीतते-बीतते शिवशंकर के पिता जी का हैजे से देहान्त हो गया और वह पहली लड़की

का बाप बना।

तकदीर का पासा पलट गया।

दस दिन मृत्युभोज करने के बाद शिवशंकर को मालूम हुआ कि उसकी बहू के सारे जेवर बिक गये हैं और वह नितान्त गरीब हो गया है। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने अपने सेठ से साफ-साफ कह दिया कि वह अब उसका रोजगार खोल दे। रोजगार खुला तीस रुपये। वह उन्हें लाया भी पर जैसा चलन है, उसके अनुसार वह पहला रोजगार बहिनों इत्यादि में बाँट दिया गया।

बाप की बरसी के बाद उसकी माँ और बहू में झगड़ा होने लगा। बात-बात पर तू-तू और मैं-मैं। तब पास-पड़ोसियों ने उन्हें अलग घर में बसवा दिया।

मुझे एकदम मौन देखकर भाभी ने पूछा, 'क्या सोचने लगे ? भीतर आकर चुपचाप ही बैठ गये।'

मैंने चौंक कर कहा, 'कुछ सोचने लग गया था भौजाई!' और मैंने बात के प्रसंग को बदलते हुए कहा, 'आपको मेरी सौगंध है। सच-सच कहिएगा कि शिवशंकर घर में हैं या नहीं ?'

'हैं।' भाभी ने टूटते स्वर में कहा। मेरी दृष्टि भाभी के चेहरे पर जम गयी। भाभी की आँखें धँस गयी थीं। चेहरे की हड्डियाँ उभर कर उसके मुख के प्रति अरुचि उत्पन्न कर रही थीं। गोरे गालों पर लुनाई की जगह गहरे-गहरे दाग चमने लगे थे। एक बार मैं फिर सोच बैठा, यही वह युवती है जिसे मैं रानी पद्मिनी कहता था। मेरा मन वेदना से भर आया।

'उसे मेरे पास भेजो।'

भाभी भीतर गयी। पहले उसने एक दिया जलाया। शायद वह भीतर खाना बना रही थी। बाद में वह लालटेन को एक पीपे पर रख गयी। उसका बड़ा लड़का आ गया। चार बच्चे ननिहाल गये हुए थे।

थोड़ी देर में शिवशंकर चोर की तरह गर्दन किये हुए छत से नीचे

उतरा। उसके सिर पर छोटे-छोटे केश थे पर चोटी गो-पद जितनी थी। शरीर दुबला-पतला था और मूँछें अभी छोटी-छोटी ही थी वर्ना वह अपने शौक के अनुसार मूंछों के 'कट' को प्रायः बदलता ही रहता है।

वह मेरे पास आ कर बैठ गया।

मैंने उसके चेहरे पर तेज निगाह जमा कर पूछा, 'क्यों रे, तेरी नीयत इतनी खराब क्यों हो गयी ?'

वह चुप रहा।

'चुप क्यों है ? बोलता क्यों नहीं ?'

'क्या करूँ टीकू, हाथ बहुत तंग है।'

'फिर उधार नहीं लेना था। देनेवाला तो अपने रुपये जरूर माँगेगा। शायद तुम नहीं जानते, आदमी एक वक्त तो कमाता है पर ब्याज आठों पहर।'

'मैं जानता हूँ, पर क्या करूँ भाई ! तुमसे कुछ छिपा हुआ तो नहीं है। यहाँ हम सबको पूरा आटा भी नहीं पड़ता। पचहत्तर रुपये मिलते हैं। नौ प्राणी ! तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ? मैं शर्म के मारे बाहर भी नहीं निकलता। तुम्हारे सामने भी नहीं आता। बड़ी शर्म और झिझक-सी लगती है।'

'इसलिए ही तो बड़े-बुजुर्गों ने कहा है कि सूदखोर बनने के पहले अपने दिल को पत्थर का कर लो, नाते-रिश्तों को भूल जाओ और वसूली के समय सिर्फ वसूली करो, चाहे कर्जदार के मुख से निवाला ही क्यों न छीनना पड़े।' मैंने एक लम्बी साँस ली और भक्-भक् करती हुई लालटेन की बत्ती पर अपनी दृष्टि जमा कर मैं फिर बोला, मैं सम्पूर्ण रूप से ये नीतियाँ नहीं अपना पाया। फलस्वरूप मैं एक सफल सूद-खोर नहीं बन सका। सच बात यह है कि मैं निकट भविष्य में इस धंधे को छोड़ ही दूँगा।'

शिवशंकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह नीची गर्दन किये हुए बैठा रहा। एकदम मौन और निश्चल। पहले की अपेक्षा उसकी गर्दन

बहुत पतली हो गयी थी।

'तुम कोई दूसरी नौकरी क्यों नहीं करते ?' मैंने फिर कहा।

'बहुत चेष्टा की पर कोई जुगाड़ नहीं बैठा। पिता जी के मरने के बाद मेरी एक इच्छा थी कि मैं अपनी कोई दूकान खोलूंगा। मैं इस व्यापार की रग-रग पहचानने लगा हूं। बड़ा ही लाभप्रद व्यापार है। आदमी आसानी से चार-पाँच सौ रुपया कमा सकता है।'

'फिर तुम दूकान खोलते क्यों नहीं ?' मैंने शब्दों पर दबाव दिया।

'दूकान खोलना हँसी-खेल नहीं। कम से कम एक हज़ार रुपये चाहिए। मेरे पास एक दूकान का पूरा प्लान है।'

वह मेरी बात सुने बिना ही उठ कर भीतर गया। मेरा मन उसकी दयनीयता के कारण कुछ उदास हो गया था। लालटेन की भक्-भक् बंद हो चुकी थी। बाहर अँधेरा और गहरा हो गया था। गली में कुत्तों के जंग ने बड़ा हो-हल्ला मचाया। लोग उन्हें शांत करने के लिए और भी जोर से 'दिर्रे दिर्रे' कर रहे थे। थोड़ी देर में कुत्तों का जंग समाप्त हो गया। मेरी दृष्टि उसके घर की दीवारों पर गयी। कच्ची और जगह-जगह पपड़ी उतरी हुई। मेरा दम घुटने लगा। इच्छा हुई कि यहाँ से चला जाऊँ।

तभी उसके दो बच्चे मेरे पास आकर खड़े हो गये।

गेहुँए रंग! पतले-दुबले! गंदे! मैले!

कपड़ों पर जगह-जगह थारियाँ दी हुई। आकर ढीले मुखों से मुझे निहारने लगे। लोग कहते हैं कि बालक देवता का रूप होते हैं पर मेरा मन उन्हें देखकर घृणा से भर आया। मैंने आँखें तरेर कर उन्हें भीतर जाने का आदेश दिया। आवाज मुँह से इसलिए नहीं निकाली कि यह एकदम अशिष्टता जानी जायेगी। बालक उदास-उदास से, सहमे-सहमे से भीतर चले गये। उनकी आँखों में घृणा की जगह परवशता और दीनता थी।

वही असह्य एकांत!

भीतर से सब्जी छौंकने की आवाज आयी। लगा कि भाभी, रसोई बनाने में व्यस्त हैं। तभी शिवशंकर हाथ में कुछ कागज लिये हुए आ गया। वह मेरे सम्मुख इतमिनान से बैठ गया और उसने लालटेन नीचे फर्श पर रख दी।

बोला 'यह मेरी योजना है। एक-एक चीज लिखी हुई है।...सच टीकू, मेरा एक बड़ा सपना था कि मैं पंसारीपने का काम सीख कर अपनी एक दूकान खोलूंगा। काका (पिता) ने यह आश्वासन भी दिया था। उन्होंने कुछ पूँजी भी जमा की थी पर उनकी एकाएक मौत ने मेरे इरादों पर पानी फेर दिया। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी। सोचा, थोड़े दिनों में कुछ पैसा इकट्ठा करके दूकान खोल लूंगा। देखो उसने एक कागज खोला। कागज पुराने बहीखातों का था। शायद बुजर्गों की कोई पुरानी बही पड़ी होगी। उसने वह कागज दिखाया। उसमें चिड़िया की टाँगों की तरह टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा था—शंकर भंडार!

'यह मेरी दूकान का नाम रहेगा!' नीचे लिखा था—किराने का सारा सामान सस्ता और बढ़िया ठीक मूल्य पर यहाँ मिलता है।

'दूकान मैं कोटगेट पर ही लूंगा, क्योंकि शहर का पुराना बाजार एक तरह से उठ-सा ही गया है। बिक्री-बट्टा बंद-सा ही है। गाहक अब सीधा यहाँ आने लगा है। इसका एक कारण यह भी है कि शरणार्थियों ने जाने-अनजाने सभी को उधार देना शुरू कर दिया है। ये लोग बड़े विश्वासी और आस्थावान हैं। कलेजा भी बहुत बड़ा रखते हैं। तोल देते हैं, माल! और अचरज की बात यह है कि लोग देर-सबेर उनकी रकम पहुँचा भी देते हैं। सच टीकू, यह सब बहुत रुपया कमाते हैं। मैं तुमसे अपने बच्चों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि तुम मेरी जरा-सी मदद कर दो तो हम भागीदारी में अच्छा पैसा कमा सकते हैं।'

और तब उसने अपनी संपूर्ण योजना मेरे समक्ष प्रस्तुत कर दी। कितनी बोरियाँ मेवे की, कितनी बोरियाँ चीनी की और कितनी तरह

की और वस्तुएँ। मै उसकी माकूल योजना देखकर विस्मित रह गया। योजना वास्तव मे अच्छी थी।

'कहो तुम्हारी क्या राय है?' उसने मेरी राय जानने के लिये पूछा।

मैं इस पर जरूर सोचूँगा।'

'हाँ-हाँ जरूर सोचना। तुम मेरे बहुत पुराने और पक्के दोस्त हो। मेरी और तुम्हारी दाँत कटी रोटी है।'

मैं कुछ नही बोला। मेरी अजीब स्थिति हो गयी। आये थे नमाज पढने और रोजा गले पड गये। मै उठने को आतुर हुआ, तभी उसने मुझे रोक दिया, 'अब भूखे क्यो जाते हो? खाना तुम्हारी भौजाई ने बना लिया है।'

'नही, मै अभी खाना नही खा सकता।'

तभी भाभी आ गयी। आते ही वह कुछ उलाहने भरे स्वर मे बोली, 'हम गरीबो का खाना इन्हे अच्छा नही लगेगा?'

मैंने व्यग्रता से विनम्र स्वर मे कहा, 'नही नही भौजाई, ऐसा मत कहो, मुझे एक-दो जगह वसूली करने जाना है। व्यापार मे देर नही चलती। चूके कि गये, फिर आगामी दो महीने तक नही मिलता।' दर-असल मुझमे वहाँ की गदगी ने उन सबके प्रति एक अरुचि-सी उत्पन्न कर दी थी। गदगी और घुटन! कितना रद्दी बना होगा इनका खाना। न जायकेदार मसाले होगे और न विशुद्ध देशी घी। मैं जूते पहनने लगा।

भाभी ने हाथ जोडकर बडी दयनीयता से कहा, 'आप इनकी अर्जी पर जरूर ध्यान देगे। यह ईमानदारी से व्यापार सँभालेगे। आपके सागर मे से कुछ बूँदे निकल भी जायेगी तो कोई हर्ज नही होगा, पर उन बूँदों से हमारा पेट जरूर भर जायेगा।'

'आप भरोसा रखे, मैं इसे छोटी-मोटी दूकान करा दूँगा।' मेरे मुख से, उनकी गिरी हुई दशा से प्रभावित, न चाहते हुए भी यह वाक्य निकल गया। यह मेरी धारणा के विरुद्ध उसकी गरीबी की विजय थी। मै वहाँ से बाहर निकलने लगा।

एकाएक भाभी को उल्टी हुई। वह नाली के पास बैठ कर कै करने लगी। मैं जूते खोलकर उसके पास खड़ा हो गया। उबकियाँ उसे बड़े भयानक रूप से आ रही थीं। लगता था कि उसका कलेजा बाहर आ जायेगा। शिवशंकर उसकी पीठ पर हाथ फेर रहा था।

मैंने पूछा, 'क्या हुआ भाभी को एकाएक ?'

भाभी जल्दी-जल्दी कुल्ले करके भीतर भाग गयी। जाते-जाते उसके पीड़ित चेहरे पर मैंने लज्जा के भाव देखे।

'क्या बात है, शिवशंकर ?' मैंने उससे दुबारा पूछा।

वह संकोच से गड़ता हुआ बोला, 'जब इसके पेट में बच्चा होता है तो यह बेचारी अच्छी तरह खा भी नहीं सकती। इसी तरह की उल्टियाँ इसे होती रहती हैं।'

'लेकिन...?' मैं विस्मय से स्थिर का स्थिर रह गया।

'क्या करूँ ? ईश्वर की सारी मेहरबानी मुझ पर ही है।'

'फिर तुम्हें ऑपरेशन करवा लेना चाहिए।'

'हर बार सोचता हूँ पर झंझटों के मारे दम मारने की भी फुरसत नहीं मिलती है। तुम कुछ घर का धंधा करवा दो तो जीवन को भी व्यवस्थित करूँ ? अभी तो दिमाग भी सही ढंग से काम नहीं करता। बस, तुमसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि मेरा सपना पूरा कर दो। तुम्हारे भतीजों की सौगंध है कि मैं तुम्हें हर महीने अच्छी रकम लाभ की दूंगा। मैंने देखा कि उसकी आँखें गीली हो गयी हैं। करुणा ने उसकी आकृति को अपने में आवृत्त कर लिया है।

इसके बाद वह हर दूसरे-तीसरे दिन मेरे पास आने लगा। मैं उसे टालता रहा। कभी मैं कहता कि विचार कर रहा हूँ, कभी कहता कि पिता जी से पूछूँगा और कभी कुछ। वस्तुतः उसकी गरीबी के कारण मुझे उसकी ईमानदारी पर शक हो गया था और मैं बार-बार इसी दृष्टि से सोचता था कि अगर घाटा हो गया तो मैं किससे लूँगा ?...और मैंने अंत में उससे साफ इन्कार कर देने का निश्चय कर लिया।

यह घटना दो माह बाद की है।

वह रात को अपनी ड्यूटी से लौटा था। मैं खाना खा कर रेडियो सुन रहा था। थका थका-सा था। आँखें भारी-भारी थीं। तभी शिव-शकर ने प्रवेश किया। उसका आगमन मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने उसे बैठने तक को भी नहीं कहा, फिर भी वह बैठ गया और कुछ देर तक चुपचाप रहा। वह मेरे समर्थन की प्रतीक्षा में था, पर मैं अशिष्टता की सीमा को ही लाँघ गया। कुछ भी नहीं बोला। नेत्र मूँदे पड़ा रहा। सोचता रहा, कैसा भूत मैंने अपने पीछे लगा लिया है!

वह ठिठकता हुआ बोला, 'क्या तबीयत कुछ खराब है।'

मैंने टूटते हुए स्वर मे कहा, 'हाँ, सिर मे दर्द है।' हालांकि सत्य यह था कि हल्की-हल्की थकान थी।

'बाजार से एनासिन ला दूँ?'

'कोई जरूरत नही। मुझे आराम की जरूरत है।'

'फिर मे कब आऊँ?'

'सुबह!'

वह चला गया और सुबह फिर आया। मैं पूजा कर रहा था। किसी पंडित ने मुझसे शिव जी के पूजन के बारे मे कहा था। सो मैं नियमित रूप में उनका पूजन करता था। सुबह-सुबह उस दरिद्र को देखकर मेरा मन झल्ला पड़ा पर मैं अपने अन्तस के आवेग-आवेश को दबा कर बोला, 'मैंने पिताजी से बातचीत कर ली है। वह कुछ नाराज होते हुए बोले कि उस आदमी के साझे मे काम करके क्या अपना 'दिवाला' निकालना है। घाटा लग गया तो कौन भरेगा? पचास ले गया था वह तो उसके देने की नहीं है।...अब तुम्हीं कहो शंकर, मैं क्या कर सकता हूँ? व्यापार के रुख को बन्दा नहीं जान सकता। कहीं घाटा लग गया तो हमारी दाल-भाजी तक भी बंद हो जायेगी। फिर मैं पिता जी के खिलाफ कोई काम नहीं करना चाहता।'

मेरी बातें सुनते ही उसका मुँह सफेद हो गया और उसकी आँखों

मे निराशा की बहुत गहरी परछाइयाँ तैर उठीं। उसके होंठ भी एक अजीब-सी चमक से दीप्त हो गये। वह क्षण भर मुझे दुख से जलती हुई तीखी नजर से देखता रहा और अंत में बिना कुछ बोले ही चुपचाप चला गया। उसके चेहरे का विषाद असह्य और तीव्रतम था।

साँझ होते ही वह मेरे घर आया। उसके हाथ में पचास रुपये थे। मुझे उन रुपयों को देते हुए वह एकदम कृत्रिम हँसी के साथ बोला, 'आज मेरा सेठ बहुत खुश है। उसने मुझे पचास रुपये माँगने के साथ दे दिये। मैं चाहूँगा कि इन्हें तुम काका को देकर मेरी ईमानदारी पर हुए शक को दूर कर दो।'

मुझे इस प्रतिक्रिया की आशा ही नहीं थी। डूबी हुई रकम के मिलने की प्रसन्नता एक सूदखोर को कितनी हो सकती है, यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। मेरी आंखों में चमक आ गयी। मैंने लपक के उन रुपयों को ले लिया और गिनने लगा।

'टीकू, एक सिंधी की दूकान बिक रही है। बड़ी मौके की दूकान है। आज चलकर सौदा तय कर लो।'

'मैं तीन बजे के करीब आऊँगा।'

'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा, वह उत्साह से बोला।

'मैं पक्का आऊँगा। तुम चिंता न करो।' मैंने उल्लास के साथ कहा। पर मैं उधर नहीं गया। इस आकस्मिक उपलब्धि के बाद मैंने तय कर लिया कि अब मैं उसे एक पैसा भी नहीं दूँगा। यही कारण था कि मैं फिर उससे नजरें बचाता रहा। इस तरह कई दिन बीत गये। शिवशंकर ने अब मेरे यहाँ आना-जाना भी छोड़ दिया था।

किन्तु एक दिन अकस्मात मैंने सड़क पर हथकड़ियों में जकड़े हुए शिवशंकर को देखा। मेरी मनःस्थिति विचलित हो गयी। मैंने उसकी ओर ताका नहीं और सीधा गणेश के पास गया। गणेश मेरा और उसका दोनों का मित्र था।

मैंने उससे पूछा, 'अरे गणेश, 'शिवशंकर को हथकड़ियाँ क्यों डाली

गयी है ?

'चोरी के अपराध में :'

'किसके यहाँ चोरी की ?'

'अपने सेठ के यहाँ। पूरे पाँच हजार की। अचरज की बात यह है कि बुरी तरह से मार खाने के बाद भी रकम नहीं दे रहा है। कहता है कि मैंने रकम खर्च कर दी। देखो, हालात् इंसान को कितना बदल देते हैं ? मुझे मालूम है कि यह शख्स इतना ईमानदार था कि घर के बर्तन बेचकर अपने आसामी को कुछ दिन पहले पचास रुपया चुकाकर आया था और आज...?' गणेश पश्चाताप में डूब गया। वह विचलित स्वर में बोला, 'इधर वह बहुत दुखी था। आखिर इंसान करे भी तो क्या ? दुख की भी एक सीमा होती है। आदमी हार जाता है, परेशान हो जाता है।'

मैंने रवाना होने का उपक्रम करते हुए कहा, 'भाई, किसी को यह पता नहीं है कि कल क्या होनेवाला है ? ईश्वर जो गुजारे, वही उत्तम है।'

मैं अपने मनको वापस तटस्थ बनाने की चेष्टा करता हुआ साइकिल पर चढ़ गया।

मनमोहनी

७

दिनाङ्क ३१-१०-५६ को रात्रि के ठीक ११ बज कर ५६ मिनटों पर मिस का चिर-सम्बोधन लिए मिसेज तथाकथित आलोचिका मनमोहिनी का देहान्त हो गया था। ठहरिए, देहान्त शब्द का प्रयोग गलत कर लिया है। सुधारता हूँ—आत्महत्या कर ली थी। कारण अज्ञात, क्योंकि उसने अपने पीछे किसी तरह का कोई खत नहीं छोड़ा था। सिर्फ सुबह शङ्का होने पर पड़ोसी लोगों ने जाकर देखा तो उसकी लाश एक सन्दूक से सटी पड़ी थी। कपड़े अस्त-व्यस्त थे, उससे ऐसा लगता था कि जान निकलने के पहले वह बहुत तड़पी थी। उसका दम बड़ी मुश्किल से निकला था। पड़ोसियों के द्वारा पुलिस को खबर कर दी गई थी। पुलिस ने लाश को पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल भेज दिया। पुलिस ने उसके कमरे को भी अपने कब्जे में कर लिया था।······उसके तीसरे दिन ही उसकी एक खास भायली (सखी) का मेरे पास खत आया। उस खत में उसने कुछ रहस्यों का उद्‌घाटन करते हुए मुझे लिखा था—"यह मनमोहिनी के राज की बातें मैं तुम्हें बता रही हूँ। तुम उसे एक वर्ष के बाद प्रकट करना, यह उसकी अन्तिम ख्वाहिश थी।"

उसकी अन्तिम ख्वाहिश को अब पूरा किया जा रहा है।

मृतक की अन्तिम इच्छा को पूरा करने का हमारा एक तरह का मानवीय कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि खूनी व हत्यारों की अन्तिम इच्छा को पूरा किया जाता है। फिर हमारी आलोचिका ने किसी का खून नहीं किया, ऐसा मेरा ख्याल है। पर उसकी खास भाभी मुझसे सहमत नहीं है। उसका कहना है "इसने एक परिवार का खून किया है, वह भी नये तरह का खून कि आदमी मर भी जाए और चलता-फिरता रहे। तुम नहीं जानते कि उसकी मौत का कारण, उन नन्हे-नन्हे मासूम बच्चों की बद्दुआएँ हैं। उस भोली पत्नी के दर्द का असर है जो घूँघट में अपने आँसुओं को छुपा कर अपने पति के जुल्म को रानसोहिनी के कारण सहती रही थी।" कुछ भी हो, उसकी कहानी मैं आज आपके समक्ष पेश कर रहा हूँ।

मेरा विश्वास है कि आप सब उस तथाकथित चिरकुमारी के किस्से में दिलचस्पी जरूर लेंगे। क्योंकि हम कितने आदर्शों की बातें भले ही करें पर छुप छुप कर तोता-मैना के किस्से जरूर पढ़ते हैं और उनमें बड़ी मस्ती लेते हैं। हमारी दिवगत आलोचिका भी तोते-मैना के किस्से और फिल्मी बातें खूब सुनाया करती थी। लीजिए दास्तान ए मुहब्बत आफ रानसोहिनी का पहला दौर प्रस्तुत है।

बचपन का किस्सा मैं नहीं जानता और न ही मैंने जानने की कोशिश की। सिर्फ रानसोहिनी अक्सर उदास और गमगीन मूड में कहा करती थी कि मेरे बाप की दिली ख्वाहिश थी कि मैं पढ़-लिखकर एक सद्गृहस्थ पत्नी बनूँ। अपने और अपने पति के कुल के नाम को रोशन करूँ और उनकी इज्जत आबरू को बढ़ाऊँ। पर जैसे ही वह बी० ए० में पहुँची वैसे ही उसने अपने बाप की तमन्ना का खून कर दिया। कारण, जवानी नामक घोड़ी को वह लगाम नहीं लगा सकी। और उसने एक परचून के व्यापारी के बेटे को अपना दिल दे दिया।''''''शायरे आजम गालिब साहब ने ठीक कहा है, 'इश्क पर जोर नहीं, यह है वह आतिश गालिब,

जो लगाए न लगे और बुझाए न बने।'......फिर अरमानों के पङ्ख लगे और उन दोनों की मुहब्बत परवान चढ़ने लगी।......तोता मैना के किस्से में जो वासना से परिलिप्त राजकुमारी और राजकुमार का जो उत्तेजित किस्सा आता है, ठीक ऐसी ही शुरुआत थी उन दोनों की।

मोहिनी उसके लिए बेताब रहने लगी। इतनी बेताब कि वह आधी-आधी रात को बेचैन अभिसारिका की तरह काली साड़ी पहनकर हॉस्टल के पहरेदार को कुछ रिश्वत देकर 'पुष्प-व्यापारी' के कमरे में आ जाती थी जहाँ वे दोनों पहले ताश खेलते थे, बाद में फिल्म के हीरो-हीरोइन की तरह पोज बनाकर शीशे में देखते थे और भोर के तारे के उगने के पहले ही राजकुमार राजकुमारी को अपने महल की ओर रवाना कर दिया करता था।......कभी-कभी इनके मिजाजी अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती थी और राजकुमारी सीप की तरह उसके प्यार की बूँद को ग्रहण कर लेती थी।

धीरे-धीरे राजकुमार के बाप को अपने बेटे के प्रेम के रहस्य का पता चला। एक दिन वह खुद आ धमका। उसने अपने बेटे को इस नाजायज कदम के लिए जोर से डाँटा और राजकुमारी को सम्बोधित करके कहा,"ऐसी सूचली (भद्दी) छोरी ही संसार में थी तुम्हारे लिए,अभी तो मैं एक-से-एक बढ़िया हजारों छोकरियाँ तुम्हारे लिये ला सकता हूँ।"

राजा का वजीर (परचून की दुकान का रोकड़िया) अपनी मूछों पर ताव देकर बोला, "हाँ शाहजादे साहब, तीन सोडा वाटर और दो कपड़ों की दुकानों का एक बादशाह अपनी लड़की को आपके हुजूर में सहर्ष हाजिर करने को तैयार है, मुझे बस आप हुक्म दीजिए।"

राजकुमार मौन रहा। वह न जाने का अभिनय करता हुआ जाने को तैयार हो गया।

सरोवर के किनारे समसोहिनी ने अपने छलिया, रसिया को भीतों का निमन्त्रण दिया। वह आया। मोहिनी ने आँसू भर कर कहा, "जानेमन, मुझे भूल जाना, मैं तुम्हारे प्यार में पागल हूँ, मेरी जवानी

तेरी दीवानी है।"

अपने बढ़िया रूमाल से सोहिनी के आँसुओं को पोंछ कर किस्से का नायक पुत्र-व्यापारी बोला, "कसम है मुझे आकाश-पाताल की, कसम है मुझे भयानक भूचाल की और कसम है मुझे अपने अरमानों व मधुर प्रीत भरे ख्यालों की अगर मेरे मन में किसी और लड़की का विचार भी आया तो !"

और राजकुमार अपने बाप के साथ चला गया।

सोहिनी गा उठी—तुम्हारे सङ्ग मैं भी चलूँगी हो मैया जैसे पतंग पीछे डोर।......लेकिन वह गीत गीत ही रहा।

और एक दिन उसी राजकुमार का एक खत उसके अपने यार के पास आया—"यार, खुदा जो करता है वह अच्छा ही करता है। मुझे एक रूपनगर की राजकुमारी मिल गई है। उसके गोरे-गोरे गाल पर तिल है जिसके कारण मेरा दिल घायल हो गया है।"

उस दिन यौवना भाराक्रांता मेरी कहानी की बदसूरत नायिका सन-सोहिनी पागल हो उठी। वह पर्वत की घाटियों में शकुन्तला की तरह करुण विलाप करने लगी। उसके आँसू उसके भद्दे गालों को चूम कर उसके आँचल पर अपने दाग छोड़ने लगे। वह बेवफा-बेवफा कह कर अपने प्रेमी को कोसने लगी, लेकिन उसके प्रेमी पर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसके विलाप का असर इतना भी नहीं हुआ कि उसके दीवाने-पन की खबर उसके प्रेमी तक पहुँचे। तब वह कुछ दिनों खामोश रही और बाद में उसने निर्णय किया कि—"प्यार बराबर वालों से करना चाहिए। अमीर का बेटा गरीब प्रेमिका का कभी नहीं हो सकता।" पुत्र-व्यापारी से प्यार करके उसने समय ही खराब किया।

फिर परीक्षा हुई। नतीजे में सोहनी फेल हो गई। छुट्टियों में वह दुखी रही और वह उस घटना को भूल गई।

दास्तान-ए-मुहब्बत ऑफ सनसोहिनी का पहला और खत्म।

× × ×

दास्तान-ए-मुहब्बत आफ मनसोहिनी का दूसरा दौर शुरू—

सोहिनी ने इस बार एक भावुक कवि को दिल दिया। यह कवि वास्तव मे उसे सच्चे दिल से प्यार करता था। उसके आत्मा-लोक में इस बदसूरत और दुबली-पतली युवती के लिए 'हेलन' से कम महत्व नहीं था। कवि उसे अपनी पलको मे बसा कर स्वप्नो के ससार में खोया रहता था। वह उसे अपने सम्मुख बिठा कर कविता करता था। दूर-दूर फैली प्रकृति की सुरम्य पहाडी घाटियो मे वे दोनो किलकारियाँ मारते हुए भागते थे और आकाश के पार एक नये ससार को बसाने की योजना बनाते थे।

कवि परम प्रसन्न था। उस बेचारे के जीवन मे पहली युवती आई थी जिसने उसे प्यार किया था। हालाँकि वह कई बार मुहब्बत के दौर मे हार खा चुका था, पर इस बार उम्मीद से अधिक उसे सफलता मिल रही थी। वह उसके आंचल के साए मे अपनी कविता-कामिनी को रात-रात अंगडाइयाँ दिलाता था और उसकी आकर्षणहीन अँखियो मे प्यार का सागर लहराता हुआ देखता था।

वह सोहिनी को प्रसन्न रखने के लिए अपनी पुस्तके तक बेच कर उसे सिनेमा दिखलाता था। उसे तफरीह कराता था। उसे और उसकी सखियो को पिकनिक देता था। लेकिन सोहिनी के नखरे व फरमाइशें वह अधिक दिन तक पूरी नहीं कर सका। लाचारी मे कवि दूसरे बहाने बनाने लगा और सोहिनी को उस पर झुंझलाहट आने लगी। उसका दिल उसके झूठे बहानों से ऊबने लगा।

"यह कैसा प्रेमी है! न वह अच्छे होटल मे चाय पिला सकता और न वह बॉक्स में सिनेमा दिखा सकता?" वह उससे नाराज रहने लगी।

कवि उसकी नाराजगी पर फिल्म के हँसोड़े की तरह हँस देता था और एक दिन—

"मिस्टर एक्स" फिल्म लगा हुआ था। सोहिनी कवि के पास आई।

कवि किसी वृक्ष के नीचे बैठा हुआ कविता की साधना मे निमग्न था। तभी सोहिनी ने उसके ध्यान को भग किया। कवि चौक कर बोला, 'हे मेरी प्राणप्यारी, आँखो की दुलारी, जग से न्यारी, मै तेरी ही प्रतीक्षा मे व्याकुल था। सुनो—ध्यान देकर सुनो—मैने कितना उच्चकोटि का गीत लिखा है।

सोहिनी कुछ बोले, इसके पहले कवि ने गीत सुनाना शुरू कर दिया—

हे सुमुखि तेरा रूप अनोखा
यह चन्दा-सूरज से चोखा
तेरा यौवन सागर का ज्वार
लहर-लहर में मचले मम प्यार
तू विहँसे तो सच कहता हूँ
बहने लगे दामिनी का मोखा।
हे सुमुखि तेरा रूप अनोखा।

सोहिनी गीत सुन कर चिढ गई। वह आलोचना करती हुई बोली, "न छन्द और न भाषा। मै पूछती हूँ कि मोखा (नाला) को हिन्दी में घँसाने से क्या लाभ? देखो कवि मै तुम्हारे विरोध मे कभी लेख लिख दूँगी।" यही से उनका नया रूप प्रकट हुआ आलोचिका का।

कवि उछल पड़ा, 'अरे जालिम! तू मेरी कविता क्या, मेरे हृदय की भावनाओं की आलोचना करे तो भी मैं कुछ नही बोलूँगा। तू अपने तीर तो चला।'

"बकवास बन्द करो।" वह भड़क उठी। कवि सहम गया। टुकुर-टुकुर प्रश्न भरी निगाह से वह सोहिनी को देखने लगा।

सोहिनी फौजी अफसर की तरह दबदबे के साथ बोली, "तुम्हे आज मेरी आज्ञा माननी ही पड़ेगी।"

उसका इतना कहना था कि कवि ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। सोहिनी का हाथ मर्दाना था। मतलब, उसमें नारी जैसी कोमलता नही थी। फिर भी कवि ने उस पर ममता हाथ फेर कर कहा,

"तुम्हारे हाथ चिकने सगमरमर की तरह हैं। जी चाहता है कि तुम्हारे अंग-अंग पर एक "शरीर चालीसा" लिख दूँ। यह रंग, यह रूप, सबसे अलग, सबसे भिन्न।"

सोहिनी शर्मा गई। वैसे आम तौर से जब कोई युवती लजाती है तो वह और सुन्दर लगती है लेकिन सोहिनी का चेहरा शर्माने पर और भी बुरा लगता है। उसके फैले हुए मोटे-मोटे होंठ जब मुस्कान के कारण फैले तो उपमा से परे हो गए। कोई माकूल उपमा उनके लिये नहीं थी।

कवि ने भावुकता से कहा, "एक दिन मेरे एक दोस्त ने कहा कि ऐसी सूनकी छोरी से क्यों प्यार करते हो? यह छोरी तो उसके लिये है जिसको कोई दूसरी छोरी न मिले। तुमने सोहिनी में क्या पाया?"··· जानती हो सोहिनी, मैंने उसे क्या जवाब दिया! यही जवाब दिया जो मजनू ने लैला के वास्ते दिया था: मैंने उसे कहा, 'बरखुरदार उसे तू मेरी आँखों से देख।' बस वह चुप हो गया। नजाकत और नफासत के परे तुममें जो प्यार है वह बहुत कम युवतियों में पाया जाता है।

कवि और भावुक हो गया। अनन्त आकाश को भाव-भरी दृष्टि देख कर वह बोला, 'मैं रूप से अधिक गुण को महत्व देता हूँ। तुम्हारी आत्मा बहुत उजली है। सफेद पंखों वाले कबूतर से एक दम गोरी।···और तुम जानती ही हो कि मुझे कविता लिखने की प्रेरणा देने वाला दिल चाहिए। मेरी यही इच्छा रहती है कि चाय की प्याली साथ में हो तुम मेरे साथ हो। मैं तुम्हें अपनी गोद में बिठाए 'खैयाम' की तरह रुबाइयाँ लिखूँ।

सचमुच सोहिनी कवि की अंक-शायिनी हो गई। थोड़ी देर कवि की अर्द्धन घड़ी के पैंडुलम की तरह हिलती रही। बाद में उसने आँखें भी बन्द कर लीं। तब सोहिनी उसको प्यार करती हुई बोली, "मैं यह भली भाँति जानती हूँ कि तुम मुझे दिल से प्यार करते हो। लेकिन डियर, केवल प्यार में मजा नहीं। प्यार के साथ पैसा भी जरूरी है।"

"क्या कहती हो सोहिनी ? प्यार के बीच पैसो को मत लाओ। प्यार पैसो से दूषित हो जाता है।" कवि ने गम्भीरता से कहा।

"अच्छा-अच्छा" उसने अपनी बाँहे उसके गले में डाल कर कहा "आज तुम्हें मेरा कहना मानना ही पड़ेगा। देखो, इन्कार न करना। वायदा करो।"

"क्या ?"

"आज मुझे और मेरी एक सहेली को सिनेमा दिखा दो।"

"कौन-सा ?"

"मिस्टर एक्स।"

"यह तो बहुत ही रद्दी खेल है। एकदम बंडल।" कवि ने नाक भौं सिकोड़ कर पुनः कहा--"कितना अश्लील गीत है—गोरे-गोरे गालों ने...।"

"यह गाना उसमें नही है। उसमें तो एक बहुत ही उम्दा रॉक एन रोल का गाना है—लाज लाल गाल...।" सोहिनी ने बड़ी दिलचस्पी के साथ मटक कर कहा, 'ऐसी मजेदार फिल्म को देखने से सिर का दर्द मिट जाता है। मै तो ऐसे ही चित्र देखना पसन्द करती हूँ।"

कवि इन्कार नहीं कर सका सोहिनी की कठोर बातों के बन्धन में कवि बँध गया। बाँहे भी इतनी सख्त थीं कि अगर वह किसी जंगली पशु को भी उनमें बाँध लेती तो वह भी मुक्त नही हो सकता था। यह भी तय हुआ कि कल सिनेमा बाक्स में देखा जायगा ताकि कभी-कभार सोहिनी कवि का हाथ प्यार से दबा सके।

लेकिन दूसरे दिन कवि महोदय पैसों का प्रबन्ध नही कर सके। कई दोस्तो के पास गए। दोस्तों ने मीठा उत्तर दे दिया। वह अपने एक सम्बन्धी के यहाँ भी गया, उसने भी वैसा ही उत्तर दे दिया कि आज-कल वह बड़ी तंगी में है।

फिर क्या करे ? भागा-भागा एक कबाड़ी के पास गया। उसे अपना टेबल-लैम्प बेचा। लेकिन छह रुपयों के टेबल-लैम्प के तीन रुपए मिले।

बेचारा क्या करता ? इधर-उधर पैसों के लिए भागता रहा और अंत में घर में आकर निर्जीव-सा पड़ गया। उसे लगा कि उसके तन में जान नहीं है। बेचारे की दुःख के कारण आँखें भर आईं।

उधर सोहिनी सिनेमा-गेट पर पाउडर से अपने चेहरे को सफेद किए खड़ी थी। वह मन ही मन धुआँ-धुआँ हो रही थी। उसे इतना गुस्सा आ रहा था जितना गुस्सा दुर्वासा को शकुन्तला द्वारा उसकी आवाज न सुनने पर आया था। उसकी आँखों में चिनगारियाँ जलने लगीं। अगर उस समय कवि महोदय बिना पैसे लिए आ टपकते तो वह उसे अपनी क्रोध की ज्वाला से राख बना देती। जब समय टल गया तब उसकी सहेली उससे मजाक करने लगी। उसके चासे पीने लगी।

सोहिनी ने क्रोध से अपने होंठ काट लिए। अपने पाँव को पटकती हुई वह बोली, मैं उसे देख लूँगी। उससे बात तक नहीं करूंगी।

वह घर चली आई। उसे इतना दुःख हुआ कि उसकी आँखें भर आईं और उसने क्रोध में दाँत पीस कर कहा, "आग लगे ऐसे आशिक को।"

उस दिन से मजनूं की आँखों से सोहिनी को देखने वाला घायल-दिल कवि सोहिनी के लिए इस तरह तड़पने लगा जिस तरह फरहाद शीरीं के लिए तड़पा था। लेकिन सोहिनी ने उस पर दया नहीं की।

एक सिनेमा न दिखाने का नतीजा यह निकला कि दोनों का प्रेम टूट गया। कवि के दिल का खून हो गया। वह सूने-सपने लिए उन्मत्त-सा घाटियों में गीत गाता फिरता था। वह लैला के घर के चक्कर निकालता था पर लैला उसे देखकर अपनी खिड़की बन्दकर लेती थी। रास्ते में मिल जाती तो इस तरह नाक पर रुमाल देकर तीर सी निकलती जैसे वह कोई बदबूदार चीज हो। तब कवि ने दर्दीले गीत लिखने शुरू किए। लेकिन गीत भी बेअसर ही सिद्ध हुए। आखिर कवि हार गया। उसने अपने लिए काल्पनिक प्रेमिका बनाली और उसने सोहिनी का लारा (पीछा) छोड़ दिया।

परीक्षा समाप्त हो गई। मोहनी कवि से बिना मिले हुए चली गई। कवि का दिल टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गया। तब उसने बड़ी सुन्दर प्रभावशाली कविता लिखी—प्यार और पैसा। लेकिन पत्थर-दिल सोहिनी का दिल पानी नहीं हुआ और अंत में कवि महोदय प्रेमिका के अभाव में इस खुदगर्ज दुनिया से बहुत दूर चले गए जहाँ लैलाएँ सिनेमा न देखने के कारण प्यार के अटूट बन्धनों को नहीं तोड़ती थीं। जहाँ शीरियाँ साड़ी न दिलाने के कारण प्रेमी को नीची नजर से नहीं देखती थीं। जहाँ प्यार से प्यार को तोला जाता था।

दास्तान-ए-मुहब्बत ऑफ मनसोहिनी का दूसरा दौर खत्म।

× × ×

दास्तान-ए-मुहब्बत ऑफ मनसोहिनी का तीसरा दौर शुरू।

वह बी० ए० पास हो गई।

पिता ने उसके हाथ पीले करने चाहे। अखबारों में विज्ञापन निकले। 'सुन्दर' की जगह 'सुशील' शब्द का विज्ञापन में प्रयोग किया गया। लड़के आए, पर उन्होंने उसे पसन्द नहीं किया। कोई कहता था, "शक्ल क्या है मानो 'जियो-जियो रे लला'।" कोई व्यंग से कहता "रंग मैले कपड़े-सा है।" कोई कहता, "मैं सोचूँगा।"

परिणाम यह निकला कि सोहिनी को किसी ने अपनी बीवी बनाना स्वीकार नहीं किया। बेचारी भीतर-भीतर घुटने लगी। उसे रातों को नींद नहीं आती थी और दिन को करार नहीं पड़ता था। अब उसे कवि का ख्याल आया पर कवि का कोई ठिकाना नहीं मिला। बाप भी उससे सीधे मुँह बात नहीं करता था। कभी-कभी वह एकांत में रो उठता था। आखिर उसने एक दिन हिम्मत करके कहा, "पिताजी, मैं शादी नहीं करूँगी। मैं आजन्म कुँवारी रहकर इंकलाब करना चाहती हूँ।"

बाप झल्लाकर बोला, "तुम इंकलाब करना चाहती हो या मजबूरी में महात्मा गांधी बनना चाहती हो। मैं कहता हूँ कि तुमसे कोई भी शादी करने को तैयार नहीं होता।"

सोहिनी का मुँह उतर गया। उसके हृदय के मर्म को उसका बाप समझ गया और उसकी आँखें भी भर आईं।

इसके बाद सोहिनी ने मन-ही-मन कुंवारी रहने का तय कर लिया। उसने सोचा—"वह दुष्ट मर्दों के बच्चों की ओर देखेगी तक नहीं। वह पुरुषों को ठोकर मारेगी।"'''तब उसने एक स्कूल में नौकरी कर ली। वह स्कूल में नियमित रूप से जाती थी। वहाँ अन्य मास्टरनियों के पतियों और प्रेमियों को देखकर उसका मन हाहाकार कर उठता था। वह उन्मादित-सी होकर रात-रात भर छत पर घूमा करती थी। न चाहते हुए भी बरबस उसका ध्यान राहगीरों पर चला जाता था और वह राहगीर की उपेक्षित नजर नहीं सह सकती थी। वह भीतर-भीतर जल जाती थी। और जब उसकी सहेली उसे अपनी बाहों में लेकर कहती "मेरा महबूब मुझे इस तरह चूमता है, मुहब्बत करता है, कहता है, जन्नत है तो मुहब्बत में, तो बेचारी सोहिनी का मुख करुणा से भर आता था। स्वप्न में वह चौंक-चौंक जाती थी। वह करे तो क्या ? करवटों पर करवटें। रात गुजर जाती थी और दिन निकल आता था।

आखिर उसने अपनी प्रतिज्ञा में संशोधन किया। उसने यह सोचा, मैंने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी पर मैं प्यार तो कर सकती हूँ। लेकिन मुझे प्यार कौन करेगा।

तब वह प्रेमी की टोह में निकलती और निराश होकर वापस आ जाती। वह अपनी सहेलियों के मित्रों में आती-जाती पर वहाँ भी उसे निराशा ही मिलती। जब किसी के नजदीक आती तो बदकिस्मती उसके सामने नंगी होकर खड़ी हो जाती और उसके दामन में नाकाम मुहब्बत के दाग चमक उठते और लोग उससे दूर हो जाते। कभी-कभी वक्त-बेवक्त उसकी पुरानी दास्तान-ए-मुहब्बत उसके कानों में पड़ती थी तब वह केवल रो पड़ती थी और हीनता से वह उस रास्ते से कई दिन तक नहीं गुजरती थी।

सुना है कोशिश करने पर खुदा भी मिल जाता है। तब सोहिनी

को प्रेमी न मिले, यह कैसे हो सकता है। अब की बार सोहिनी को एक प्रेमी मिले पत्रकार याने अखबारनवीस। पत्रकार एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे और शादी शुदा भी थे—अखरे-अखरे। सरकारी विज्ञापनों व ब्लेकमेलिगों से जैसे-तैसे उनका अखबार निकलता था। उम्र ढलती थी, इसलिए जवान सोहिनी को पाकर धन्य-धन्य हो उठे। पहले-पहले वे गुप्त रूप से मिलते थे। लेकिन प्यार कभी छिपता नहीं। वह प्रकट हो गया। तब सोहिनी ने अपने बाप व परिचितों से साफ कह दिया, "वे मेरे एक अच्छे दोस्त हैं। मैं उनसे ज्ञान-दान लेती हूँ।"

जब कोई उसके प्रेमी कुंठित जी की आलोचना करते तो वह बिगड़ कर कहती थी, "आप लाख कोशिश करें लेकिन आप, मुझ मे और कुंठित जी के बीच कभी भी दरार नहीं डाल सकते। हम एक-दूसरे को खूब समझते हैं।"

प्यार बढ़ता ही गया।

पहले वाचिक और बाद में कायिक।

एक दिन सोहिनी ने घबराकर कहा, "मैं माँ···?"

कुंठित जी के नीचे की जमीन खिसक गई। घबराकर बोले, "क्या कहती हो?"

"ठीक कहती हूँ। हजार बार कहा, आत्मा का प्यार रखो।"

"लेकिन मैं यह समझता था कि जिस स्त्री में पुरुषत्व अधिक होता है, उसे इसका खतरा कम ही रहता है।"

सोहिनी चीख पड़ी, "बन्द करो अपनी बकवास को। मैं कहती हूँ कि कोई इलाज करो, कोई उपाय करो, कोई ट्रीटमेंट करो!"

कुंठित जी की एक चरित्र-हीन नर्स मायली थी। उससे अनुरोध किया गया और बच्चा गिरा भी दिया गया।

प्यार वापस नई बहार की तरह अंगड़ाई ले बैठा। बदनामी के कारण सोहिनी को नौकरी से निकाल दिया गया। मैं दाद सोहिनी की हिम्मत को भी देता हूँ—अब वह खुल्लम-खुल्ला कुंठित जी की प्रेमिका

बन गई। वाह रे कुंठित जी, उन्होंने भी इश्क निभाया तो तहे दिल से। उन्होंने उसे संपादिका बना दिया। सोहिनी का मुख्य काम था पत्र-व्यवहार करना। पुस्तकों की समालोचनाएँ करना। आलोचना के छिछले लेख लिखना।

कुंठित जी उसमें तल्लीन होते गए। वे उसके प्यार में इतने तन्मय हुए कि वे सारी की सारी इन्कम सोहिनी की फरमाइशों को पूरा करने में लगा देते थे। धीरे-धीरे उनका परिवार अभाव-ग्रस्त होता गया। जब अभाव की एक सीमा आई तब उनकी बीबी अपना हक माँग बैठी। अधिकार को लेकर कुंठित जी व उनकी बीबी में झगड़ा होने लगा और गुस्से में कुंठित जी तीन-तीन दिन घर नहीं जाते थे। इस बीच मानवता पर लेख लिखने वाली सोहिनी कुंठित जी के साथ गुलछर्रे उड़ाती थी। तब उनकी बीबी उनके मित्रों से कहती,पर कुंठित जी की दीवानगी पर किसी की बात का कोई असर नहीं हुआ। वे सोहिनी की ओर बढ़ते ही गए।

कई बार उनकी बीबी सोहिनी के पास आई। इससे अपने बच्चों के भविष्य और अपने सुहाग के सुख की भीख मांगी, पर सोहिनी ने पत्थर की तरह कह दिया, "मेरा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हम दोनों मित्र हैं। पत्र को अच्छा बनाने में लगे हैं।"

कुंठित जी को सोहिनी से बड़े फायदे रहे। वह अखबार की इन्कम बढ़ाने के लिए खूब प्रयास करती थी। सोहिनी बड़े प्यार से परिचितों को लिखती 'अखबार की हालत खराब है, आप इसके बीस ग्राहक बना दीजिए। आपकी कहानी इस अंक में छप रही है, आर्थिक हालत बहुत खराब होने की वजह से मैं आपको प्रस्तुत अंक की वी. पी. पी. भेज रही हूँ। भाई साहिब, मुझे उम्मीद है कि आप इसे छुड़ा कर अनुगृहीत करेंगे।'

इसके साथ ही साथ बड़े-बड़े गीतकार—कलाकार साहित्कार की वह तन और मन से आवभगत करती थी और उनसे वापसी 'पत्र' के रूप

मे बेती थी ।.........मतलब यह है कि सोहिनी के आगमन पर कुठित जी को लाभ-ही लाभ दीखे ।

लेकिन कुठित जी के एक चचेरा भाई था । वह बड़े शहर मे रहता था । और बहुत ही उच्चकोटि का साहित्यकार था । जब उसे इस अस्वस्थ प्रेम का पता चला तथा अपने भतीजों की दुर्दशा का हाल मालूम हुआ तो वह आया और उसने सोहिनी को समझाया । उसकी सच्ची व तीखी बातो से उल्फत की दीवानी सोहिनी का शीशा-ए-दिल जख्मी हो गया और उसने गुस्से मे उसका अपमान भी कर दिया । इससे उसके चचेरे भाई ने उसे कुछ कड़वी बातें सुना दी । सोहिनी की आंखों मे बदले की भावना चमक उठी और उसने चुपचाप उनके चचेरे भाई की पुस्तकों की ऊटपटाग आलोचना लिखी और कुठित जी को बिना कहे उनके ही अखबार मे छाप दी ।

फिर क्या था ? इस दीमागी दियालिएपन से कुठित-बीबी का दिमाग गर्म हो गया । वह सीधी दफ्तर आई । सोहिनी सिगरेट का गोलाकार धुआँ छोड़ती हुई कुछ लिख रही थी । उसने रौद्र-रूप धारिणी कुठित-बीबी को जैसे ही देखा, वैसे ही सिगरेट बुझाकर वह सावधान हो गई ।

कुठित-बीबी ने उसके समक्ष अखबार फेंक कर कहा, तुम अपने आपको क्या समझती हो ? यह बकवास मेरे देवर का कुछ नहीं बिगाड़ सकती । पर तुमने उसके चरित्रो को अस्वाभाविक बताया,मे उसके बारे मे तुम्हे कुछ कहना चाहती हूँ । पहले मुझे तुम इतना बताओ तुमने जिन्दगी और उसके लोगो का कितना अनुभव किया है ? उनमे कितनी गहराई से गई हो ? और तुम जैसी कच्ची व खोखली बुद्धि वाली आलोचिकाओ के लिए हर नई बात अस्वाभाविक और हर नया दृष्टि-कोण कृत्रिम होता है ।......और दूसरी भाषाओं वाले जो भी लिख दें, वह तुम्हारे लिए आदर्श बन जाता है । तुम अपनी हीनता को छोड़कर स्वस्थ आलोचना करना सीखो ।"

सोहिनी विमूढ-सी कुंठित-बीबी का चेहरा देखती रही । वह पुनः

भड़क कर बोली, "तुम समझती हो कि मैं केवल बच्चे पैदा करती हूँ ? शायद तुम्हे पता नही कि मैं मैट्रिक व साहित्यरत्न पास हूं तथा मुझे साहित्य के अध्ययन का बड़ा शौक है। मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ कि यह सब द्वेष के कारण हुआ है और तुम्हे हिम्मत बँधाने वालो को भी मैं जानती हूँ। एक है विदेशी कहानियो को चुराकर पाठको पर रौब गालिब करने वाला तैमूरलग और दूसरा लेखक व पत्रकार जो प्रतिभा पर नहीं, जातीयता व व्यापारिक आधारो पर साहित्यिक बना हुआ है।'''क्या आलोचना की है ! प्रूफ की गलतियाँ भी भाषा की गलतियाँ बताना ! चरित्र अस्वाभाविक है ! जरा मेरी बात का जवाब दो ! क्या यह चरित्र अस्वाभाविक है ? तुम बी ए पास लड़की हो, सम्पादिका हो, मानवता पर लेख लिखने वाली हो, तुम अपनी आत्मालोचना क्यो नही करती ! तुम अपने गिरेबान मे क्यों नही देखती ? तुम्हारी जैसी आदर्शमयी नारी एक औरत की जिन्दगी मे आग लगाकर, सात-सात मासूम बच्चों के पेट पर लात मार कर एक प्रौढ़ व्यक्ति से प्यार करे। मै समझती हूँ कि ऐसा यथार्थवादी चरित्र प्रस्तुत करने वाले को कोई भी स्वाभाविक नही बताएगा पर है तो सही ही ? क्यों ? तुम्हारी जैसी चतुर और प्रबुद्ध स्त्री सात बच्चों के बाप को प्यार करती है कि नही ?''''''पर इस प्यार की उम्र बहुत कम है। स्वार्थ और पूँजी के आधार पर टिका प्यार चार दिन की चाँदनी की तरह होता है। कभी न कभी मेरी सहिष्णुता, कभी न कभी इन बच्चों का स्नेह अपने बाप को पराजित करके ही छोड़ेगा''''''फिर तुम्हारा क्या होगा ?"

वह चली आई !

सन्नाटा !!

सोहिनी को काटो तो खून नही। वह निर्जीव-सी कुर्सी पर लुढ़क गई। उसके मन मे तूफान खड़ा हो गया। उसे लगा कि वह जो कुछ कर रही है, वह गलत कर रही है। उसे अपनी नैतिकता का यह धरातल नहीं बनाना चाहिए। आखिर उसके इस जीवन का अन्जाम

क्या होगा ?

और उसके समक्ष लम्बा अन्धेरा छा गया। ऐसा अन्धेरा जिसमें रोशनी की लकीर की तरह उसको अपना बिना मंजिल का रास्ता दिख रहा था।'''''''''तब रात को उसे सपने में उन सात बच्चों के उदास मुख दिखते और चौदह आँखों की घृणा उसे अपने में डुबोना चाहती।''' और धुंधलके में घूघट में लिपटी एक दुबली नारी का पीला चेहरा दिखता, जिसकी मांग का सिन्दूर लहू बनकर उसके चेहरे को वीभत्स कर रहा था और पासमें वह कलम लिए खड़ी होती थी।''''''धीरे-धीरे उसकी आत्मा में उसके अपने ही पाप गूँजने लगे। और एक दिन उसने उन्मादित होकर आत्म-हत्या कर ली।

पोस्टमार्टम के बाद मालूम हुआ कि उसने जहर खाया था।

उसकी अर्थी में कोई भी विशेष व्यक्ति सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि वे उसे एक समझदार-सुशिक्षित छिनाल कहते थे।

मुझे उसकी गम भरी दास्तान-ए-मुहब्बत का अन्तिम दौर खत्म करते हुए बड़ा ही दुख हो रहा है। सहानुभूति है, उस प्यार की प्यासी, गलतफहमी की बेगम सोहिनी के प्रति। अलविदा। ● ●

गिर्जे पर पथरायी दृष्टि



छोटा सा मकान। सीलनसे दीवार पर एक जगह एक दाग सा पड़ गया था। और कहीं-कहीं पलस्तर के टुकड़े भी उतर गये थे, जिससे ईंटें साफ दिखलायी पड़ रही थीं। उसकी बायीं ओर एक पुराना कलेन्डर टँगा था—ईसा-मसीह का—अज्ञान और अन्धेरे में घिरी आत्माओं को प्रकाश-दान देते हुए। दायीं ओर का दरवाजा पीछे के आँगन में खुलता था। आँगन के ठीक सामने दो कमरे बने थे जिनकी दीवारों का हरा रंग उड़-उड़ सा गया था।

अभी-अभी रैजिन रसोईघर से निकली थी। उसके दोनों हाथों में एक बड़ी तश्तरी थी। तश्तरी में दो उबले अंडे टोस्ट और चाय थी।

उसने घुटनों तक फ्रॉक पहन रखा था जिससे उसकी गेहुँए रंग की माँसल पिंडलियाँ साफ दिखलायी पड़ रही थीं और उसके मटमैले पाँव एकदम नंगे थे।

वह दालान को पार कर रही थी। अभी वह दो कदम ही चली थी कि उसके पाँव में काँटा चुभ गया। काँटा चुभते ही उसके मुँह से चीख-सी निकल गयी। पर तश्तरी रखने की जगह न होने के कारण वह लँगड़ाती हुई भीतर घुस पड़ी।

"अरे! तेरे पाँव में क्या हो गया?" उसके बाप ने पूछा।

"काँटा चुभ गया है डैडी।"

बाप ने उसे मेज खिसकाने मे मदद दी और रैंजिन ने अपने लम्बे नाखूनों से काँटे को खींच कर बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात वह चाय बनाती हुई बोली, "यह सब बकरी के रखने की वजह से होता है। हजार सँभाल कर 'पाला' लाती हूँ पर काँटे बिखरे बिना नहीं रहते।"

"लेकिन बकरी का लाभ भी···।"

"पहले चाय पी लीजिये" उसने बात को बीच मे काट दिया।

रैंजिन का बाप तन्मय होकर चाय पीने लगा। उसकी मुद्रा गम्भीर हो गई और उसकी फैली-स्थिर दृष्टि मे सूनापन झलक उठा। बूढा बाप हारा-थका, अपंग, सूखा-दुबला। लगता था—जिन्दगी उससे मोहवश लिपटी पड़ी है। बाप को बड़ी देर तक मौन देखकर रैंजिन से नही रहा गया। वह बुझे-बुझे स्वर में बोली, "क्या सोच रहे हैं डैडी?"

"सोच रहा हूँ, मैं मर क्यों नही जाता? आदमी पृथ्वी पर भार होकर क्यो जीता है। उसके जीने का क्या मकसद हो सकता है?"

"उम्र की हर घड़ी साभिप्राय होती है डैडी! जरा सोचिये न, इस संसार में मेरा आपके सिवाय कौन है? कौन है जो मुझे प्यार-ममता देगा?"

वह उदास ही हँसी हँसकर बोला "अपंग अवश्य हूँ, किन्तु नादान नहीं हूँ। मैं सब समझता हूँ। बच्चा नही हूँ। तुम्हारे भीतर छिपे तूफान दुख और परेशानियों से मैं खूब परिचित हूँ। मैं जानता हूँ कि अब तुम्हें किसके और कैसे प्यार की जरूरत है। आह! मुझे प्रभु ने क्यों जिन्दा रखा है।" बूढ़ा बिलकुल अवश हो उठा। दो बूँद आँसू भी छलछला आये।

रैंजिन उठी। उसने बाप का मुख चूमकर कहा, "आप व्यर्थ परेशान हो रहे है डैडी! मनुष्य इससे अधिक सुखी क्या हो सकता है कि उसे अच्छा भोजन, सुन्दर कपड़े और कर्त्तव्य पालन करने का पूरा अवसर मिल जाय। मैं कितनी सुभागी बेटी हूँ कि मुझे अपने 'डैडी की

सेवा का सौभाग्य मिला हुआ है।"

बूढ़ा निरुत्तर रहा। वह जैसे खो गया।

"आप चाय पीजिये न ?" रंजिन के स्वर म आग्रह था।

"नही।"""पता नहीं क्यों मन हर चीज के प्रति उदासीन हो रहा है।"

"डैडी !" उसने अपने बाप के गले में बाहें डाल दी। उसके चेहरे पर बचपन की शोखी थी। बूढा हँस पडा। वह पुन: चाय पीने लगा। वह कुछ देर तक खिड़की के फटे पर्दे को देखता रहा जो निकलते सूर्य की किरणों को रोकने का असफल प्रयास कर रहा था। हवा का जोर का झोंका आया। पर्दा बीच मे से और फट गया।

"यह पर्दा बिल्कुल फट गया है बेटी।"

"आप चिंता न करें, मेरी रेशमी साड़ी भी फट गयी है। मैं उसका नया पर्दा बना दूँगी। संयोग भी तो एक चीज होता है।"

"और हाँ बेटी, कल रॉबिन आया था।"

"क्यो ?"

"बस इतना ही कहकर चला गया कि रंजिन आजकल मुझसे थोड़ी नाराज है।"

"वह झूठ बोल रहा था।"

"शायद।"

"शायद नहीं, सचमुच। वह चाहता है, रंजिन उसके लिए अपने व्यक्तित्व को खत्म कर दे। अपने आपको मार दे। अपने कर्तव्य और अपनी इन्सानियत को छोड़ दे, यह मेरे लिए संभव नहीं।"

"यह उसकी ज्यादती है।"

"कमजोर पर सभी ज्यादती करते हैं। रॉबिन न करे यह कैसे हो सकता है ?" कह कर वह चाय के बर्तन लेकर वापस रसोईघर में चली आयी। वह रसोई की सफाई करने लगी। तभी बाहर साइकिल की घन्टी बज उठी। घन्टी की टन-टन सुनते ही रंजिन के सारे तन में

नवीन स्फूर्ति आग गयी। वह हठात् द्वार की ओर बढ़ी। उसकी वाणी पर रॉबिन शब्द भी आया पर आज उसने उसे प्रकट नहीं होने दिया। वह फिर सफाई में तन्मय हो गयी। उसका मन बाहर पहुँच गया था पर उसने अपने आपको अत्यन्त व्यस्त बनाए रखा।

घण्टी एक बार फिर बजी।

वेदना की लकीर रैंजिन के अन्तस को चीर कर शांत हो गयी। उसने स्वयं पर संयम रखा। वह कपड़े से बर्तनों को निष्प्रयोजन ही झाड़ने लगी।

रॉबिन रसोई के दीवार के बीचो बीच आकर खड़ा हो गया। उसकी छाया का आभास रैंजिन को हो गया था, किन्तु वह निश्चल बैठी रही—अपने को जब्त किये।

"रैंजिन!" उसने पुकारा।

रैंजिन ने अपनी पलकें उठायीं। अपलक अर्थभरी दृष्टि से उसे देखती रही। उसने चाहा कि वह सदा की तरह आज भी रॉबिन को अपनी बाहों में भर कर उसके मुख पर सहस्त्र चुम्बनों की वर्षा कर दे पर उसने अपने मन की अधीरता को जब्त किये रखा।

"रैंजिन, तुम्हारा नाराज होना ठीक नहीं है। तुम्हें मेरी बातों पर गम्भीरता से विचारना चाहिये। आखिर यह कब संभव हुआ है कि एक भरे-पूरे परिवार का जिम्मेदार सदस्य अपनी पत्नी के कहने पर उसके घर आकर रहे। जरा सोचो न, मेरे पिता के दिल पर कितना बड़ा आघात लगेगा?"

रैंजिन ने उसकी बात का कोई उत्तर न देकर इतना ही कहा, "चाय पीओगे?

"नहीं अभी ही पीकर आया हूँ।" कहकर वह दालान में पड़ी स्टूल को उठा लाया और उस पर बैठ गया।

"फिर भी एक कप पी ही लो।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।"

रंजिन चाय बनाने लगी। रॉबिन सिगरेट जलाता हुआ बोला, "कल तुम सरोज की पार्टी में भी नहीं आयी। लोगों ने मेरी बहुत मजाक उड़ायी। आखिर तुम्हें मेरा इस तरह अपमान कराने से क्या मिलता है?"

"डैडी की तबियत ठीक नहीं थी। पता नहीं, उन्हें कल एकाएक क्यों कै हो गयी। मैं तो घबरा गयी थी।" रंजिन ने गंभीर-स्वर में कहा। "रॉबिन! तुम्हारा प्यार कर्तव्य की तलवार पर खड़ा है। उसे मंजिल तक पहुँचाने में धैर्य और सावधानी की जरूरत है।"

"आखिर दुल्हिन जायगी अपने ससुराल के घर ही।"

"लेकिन रॉबिन! मैं अभी दुल्हन बनकर तुम्हारे घर नहीं जा सकती। अरे, तुम कैसे आदमी हो? मेरे बूढ़े बाप की हालत पर तुम्हें तरस नहीं आता। उसका इस दुनियाँ में कौन है। कौन उसे पानी पिलाएगा, कौन उसे खाना खिलायेगा? उसके कोई बेटा भी तो नहीं है; केवल एक लड़की है—कुल सत्तर रुपये कमाने वाली लड़की। जरा उस बूढ़े को देखकर विचारो।...मैं वह दुल्हिन बनना नहीं चाहती जिसकी विदाई बाप की मौत का न्योता बन जाय।"

रंजिन का चेहरा लाल हो गया था और उसके नेत्रों में आँसू छलछला आये थे। इधर चाय उफन कर आग बुझाने लगी थी। उसकी सुगन्ध ने रंजिन का ध्यान भंग किया और वह चाय नीचे उतारने लगी।

रॉबिन ने कहा "आदमी की उम्र का कोई भरोसा नहीं है। मैं कहाँ तक प्रतीक्षा करूँगा? तुम दोनों जून खाना हमारे घर से अपने डैडी के लिए भिजवा देना।"

"नहीं। मैंने एक बार इस बाबत डैडी से पूछा था। उन्होंने हाँ जरूर भर ली थी, पर हाँ के साथ जैसे विषाद उनके चेहरे को ढक गया। रात-आधीरात उन्हें कौन संभालेगा।"

"मैं उनसे बात करूँ?"

"नहीं। अगर तुमने उन्हें कुछ भी कह दिया तो..." रंजिन का स्वर

कठोर था। उसने चाय का एक प्याला उसकी ओर बढ़ाया और खुद भी चाय पीने लगी।

कुछ देर दोनों मौन रहे। दोनों बहुत ही गम्भीर थे।

एकाएक रैंजिन बोली, "मैंने तुम्हें कई बार कहा है कि अगर तुम्हें मेरी शर्त मंजूर नहीं है और न तुम मेरी प्रतीक्षा कर सकते हो तो किसी दूसरी लड़की से विवाह कर लो। मैं सच कहती हूँ—तुम्हें दुआयें ही दूँगी।"

"यह संभव होता तो मैं तुम्हारे पास बार-बार नहीं आता। रैंजिन! मैंने तुम्हें प्यार किया है। तुम्हारे साथ मैंने जीवन के हजारों क्षण बिताये हैं। तुम्हारे बिना मैं एक पल भी जिन्दा नहीं रह सकता। तुम्हें मुझसे विवाह करना ही होगा। कहाँ तक हम पाप करते रहेंगे?"

रैंजिन की दृष्टि में संकोच तैर उठा, "मैं उसे पाप नहीं मानती। समर्पण, वह भी प्रेमी को, वह तो महादान और एकाकार का प्रतीक होता है। फिर भी मैं उस समर्पण को एक भयानक दुर्घटना की तरह धीरे-धीरे भुला दूँगी! अपने अन्तस के कलुष, पाप और गंदगी को आँसुओं से धो डालूँगी। दर्द के आँसू किस पाप को नहीं धो सकते हैं? पर मैं अपने डैडी को जरा भी आघात नहीं लगने दूँगी। उन्हें नहीं छोड़ सकती।"

"यह तुम्हारा अंतिम निर्णय है।"

"हाँ।" उसकी आँखें सजल थीं।

× × ×

रॉबिन चला गया। रैंजिन अपनी हथेलियों में मुँह छिपाकर रो पड़ी। उसने रॉबिन को क्यों प्यार किया? प्यार करके उसे अपना शरीर क्यों सौंपा? आज उसने इस बात को याद दिलाकर उसे ठगना चाहा। सोचा होगा—नारी सतीत्व के नाम पर मजबूर की जा सकती है। पर मैं उसकी बात नहीं मानूँगी। आखिर वह अपने स्वस्थ-स्वावलम्बी बाप को नहीं छोड़ सकता तो मैं अपने दीन-हीन बाप को क्यों छोड़ूँ?

उसका बाप खूब कमाता है और मेरे बाप की हर साँस को मेरे सहारे की की जरूरत है।

वह बड़ी देर तक विचारो मे खोयी रही।

गिर्जाघर के पीछे रैंजिन का मकान था और उसके काफी दूर सरकारी हस्पताल के पीछे रौंबिन का। रैंजिन का बाप कम्पाउन्डर था जिसकी एक टांग और एक हाथ लकवा हो जाने से बेकाम हो गया। मा बचपन मे मर गयी थी, अत. परिस्थितिवश रैंजिन को तुरन्त नौकरी करनी पड़ी। उसने केवल मैंट्रिक ही पास किया था।

वह आरम्भ से तेज बुद्धि की थी। रौंबिन के साथ उसका बचपना बीता था। दोनों साथ-साथ पढे थे। यौवन की दहलीज पर रोमाच से भरपूर क्षण भी बिताये थे। विवेक के साथ उनके विचारों मे दृढता आने लगी। दोनो ने निश्चय किया कि वे शादी करेंगे किन्तु गत दो वर्ष पूर्व रैंजिन के पिता के साथ यह दुर्घटना घट गयी। वे लाचार और असहाय हो गये। अतः वह अकेले पिताजी को नही छोड सकती थी। अब रौंबिन शादी के लिए जल्दी करता और रैंजिन कहती कि नही, अभी नहीं। धीरे-धीरे उनका वातावरण बिगड गया। रौंबिन कभी-कभी उस पर क्रोधित हो उठता था। रैंजिन के बाप को भी इस तनाव का धीरे-धीरे आभास हो गया और उसने रैंजिन को कई बार समझाया भी पर रैंजिन का संवेदनभरा मन अपने लाचार बाप को छोडने को तैयार नही हुआ।

× × ×

रैंजिन का ईसाई बाप प्यारेलाल थामसन बिस्तरे पर लेटा हुआ बाईबिल पढ़ रहा था। उसके चेहरे पर स्निग्धता और प्रगाढ़ शांति थी। तभी रौंबिन ने प्रवेश किया।

"डैडी!" गुड मॉर्निंग।

"आओ रौंबिन आओ, आज कॉलेज नही गये?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"छुट्टी ली है।"

"कोई खास काम था ?"

"हाँ, वह भी आपसे ही।"

"बैठो, हाँ कहो।"

रॉबिन इतमिनान से बैठ गया। उसने सिगरेट जला ली। उसका कश खींचता हुआ वह बोला, "डैडी ! आपसे एक प्रार्थना है, आप रैजिन को समझा दीजिये। वह अपना हठ नहीं छोड़ रही है। मैंने उसे लाख बार समझा दिया कि तुम डैडी को दिन में कई बार संभाल लेना, पर वह अपने हठ पर ज्यों की त्यों है। कहती है—तुम यहाँ आकर क्यों नहीं रहते ? भला यह कैसे संभव हो सकता है ?"

थामसन ने दुखी मुस्कान के साथ कहा "अब तुम दोनों को विवाह कर ही लेना चाहिये। अधिक देर किसी अनिष्ट का कारण भी बन सकती है।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ। देखिए न, मेरे डैडी भी मुझे विवाह के लिये बार-बार कह रहे हैं।"

"कैसे नहीं कहेंगे। तुम्हारा छोटा भाई पीटर भी तो जवान हो रहा है। खैर, मेरी भी यह इच्छा है कि बचपन का प्यार अब अटूट बन्धनों में बँध जाय।"

"बँध जाने पर आप'''।" उसने उसकी मरी हुई टाँग और हाथ की ओर संकेत किया।

"मैं ही अभागा हूँ।" थामसन ने भीगे नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा, "कुछ इन्सान बड़े बदनसीब होते हैं। देखो न, मेरे कारण मेरी बच्ची को अपने निजी जीवन का थोड़ा भी सुख नहीं मिल पा रहा है। बेचारी रात-दिन मेरे जीवन को सँवारने में लगी रहती है। मैं अब उसे मजबूर करूँगा।"

"लेकिन डैडी आप मेरा नाम मत लीजियेगा। आप उसे किसी भी

तरह शादी के लिए राजी कर लीजिये।"

"कर दूँगा।"

"सच !"

"यकीन रखो।"

रॉबिन चला गया। थामसन बड़ी देर तक विमूढ़ सा बैठा रहा। वह अपनी बदनसीबी के बारे में न जाने क्या-क्या सोचता रहा जिसके पाक्य उसे दूसरे पल याद नहीं रहे। हाँ, यह सही था कि उसने अपने मन में यह निर्णय जरूर कर लिया था कि उसकी बदनसीबी अब उसकी बेटी के जीवन को भी निगलने लगी है।

× × ×

घर में प्रवेश करते ही रैजिन ने पुकारा, "डैडी, गुड ईवनिंग।" और उसने आकर डैडी को अपना चुम्बन दिया।

"आज बड़ी देर कर दी ?"

"डैडी मैंने एक ट्यूशन कर लिया है। सेठ बनारसी दास है न उसकी लड़की को पढ़ाऊँगी। तीस रुपये एक घन्टे के देंगे। है न खुशखबरी ?"

"नहीं पगली, क्यों अपने आप पर अत्याचार कर रही है।" उसने थोड़ा रुककर कहा, "मेरी एक बात मानेगी ?"

"एक नहीं, अनेक कहो डैडी !"

"फिर तू विवाह कर ले। बेचारा रॉबिन तेरे प्यार में पागल बना फिरता है। और मेरी भी आँखें बन्द होने के पहले तुझे दुल्हन के रूप में देखना चाहती है। बूढ़े बाप की सबसे बड़ी लालसा यही तो होती है कि उसकी सन्तान को सारे सुख उसकी आँखों के सामने मिल जायें।"

रैजिन का स्वर एकदम बदल कर तेज हो गया, "मालूम होता है, रॉबिन आया था।"

थामसन घबरा गया, परन्तु उसने अपने आपको सँभाल लिया। अपनी झेंप को हँसी में छुपाकर बोला, "नहीं नहीं, तुम्हे तो आजकल इस विषय

गे रॉबिन ही नजर आता है। वह यहाँ क्यों आने लगा ? वह तो इस समय कालेज चला जाता है।"

"फिर आप मुझे कभी भी शादी के लिए न कहा करें। मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि आपके जीते जी आपको अपने से विलग नहीं करूँगी। रॉबिन में अगर इन्सानियत है और वह मुझसे सच्चा प्यार करता है तो वह यहीं रहने की शर्त के साथ मुझसे विवाह कर सकता है।" रैंजिन ने बड़ी दृढ़ता से कहा। उसकी आँखें स्थिर हो उठीं। उसका बदन काँपने लगा जैसे वह अपनी सभी भावनाओं को मार कर कह रही है।

थामसन कुछ बोलें, इसके पहले ही रैंजिन बाहर चली गयी। वह अपने काम में व्यस्त हो गयी। बाप-बेटी ने साथ-साथ खाना खाया, पर दोनों में से कोई नहीं बोला। उनकी भाव-भंगिमा से लगता था जैसे वे दोनों बाप-बेटी नहीं, अपरिचित हैं। थामसन ने सोने के पूर्व पूछा, "मुझसे तुम नाराज हो रैंजिन, अपने इस नालायक बाप को क्षमा कर देना। अब मैं तुम्हें कभी भी विवाह के लिए मजबूर नहीं करूँगा।" थामसन की आँखें भर आयीं। रैंजिन भी अब अपने को नहीं रोक सकी। नन्हीं बालिका की तरह पिता की गोद में फूटकर सिसक पड़ी।

रात काली और काली हो रही थी।

× × ×

रैंजिन अगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गयी। नीला आकाश। थामसन ने खिड़की की राह ताका—आकाश—गंगा जवानी के जोश में मदहोश और खामोश है।

शांत गिर्जाघर। सन्नाटा।

वह सोच रहा था—"मेरे जीवन का क्या मकसद है ? मैं बेकार हूँ, भार हूँ, बेटी की जिन्दगी का दुश्मन हूँ, क्यों हूँ ? केवल जीवन के इन घिनौने, सिसकते-तड़पते चंद साँस और लेने के लिए। छि:, छि:.छि: मैं कितना स्वार्थी और नीच हूँ ?" उसने काली छाया सी सोयी अपनी बेटी को देखा। उसका मन उसके पीड़ित जीवन की स्मृति से भर आया और

वह न जाने क्यों सिसकने लगा। उसकी सिसकी उसे ही सुनायी पड़ती थी और अंत में वह खिसकता हुआ रेजिन के पास पहुँचा। उसके बिस्तरे को चूमा और अपने मन में कहा, "घोड़े की टाँग टूट जाने पर समझदार मालिक उसे पीड़ा से बचाने के लिए गोली मार देता है, फिर क्यों नहीं, ईश्वर एक ऐसा कानून बनाता जिससे प्रयोजनहीन इन्सानों को भी साँस लेने का हक न हो।" उसके मन में भयानक आन्दोलन होते रहे।

वह घुंघलके के सहारे बढ़ा। खुरदरे फर्श पर घिस-घिस कर चलने से उसे बड़ी तकलीफ हो रही थी। धीरे-धीरे वह कमरे के बाहर हो गया। उसने चारों ओर देखा—स्तब्ध और गूँगा वातावरण। वह आकाश को निहारता रहा। गिर्जे के ऊपरी गुम्बद को आदर भरी दृष्टि से देखता रहा, "ईश्वर! मुझे क्षमा करना।" वह धीरे-धीरे बकरी के पास गया। बकरी जैसे उसके मन के बुरे इरादों से परिचित हो गयी हो, वह मिमिया उठी। थामसन काँप गया। उसमें क्षणिक जड़ता आ गयी और आँखें अनायास गिर्जे की ओर उठ गयीं।

उसने बड़ी सफाई से रस्सा खोला। वह सारा कार्य इस तरह कर रहा था जैसे उसने सारी योजना पहले ही बना रखी हो। वह रस्सा लेकर फिर बढ़ा। खिसकते-खिसकते उसका पुराना पाजामा भी फट गया। वह छत की सीढ़ियों के पास जाकर सुस्ताने लगा। उसने तुरन्त उस रस्से को अपने गले के चारों ओर लपेटा, तभी गिरजे की घड़ी ने तीन बजाये। उसे लगा कि तीन टंकारें हथौड़े की तरह उसके दिल पर पड़ रहे हैं। वह विचलित हो उठा और उसका सारा बदन भीग गया क्योंकि उसने उसी समय सोचा था, 'कहीं रेजिन जाग गयी तो?' उसने सीढ़ियों की ओर अपनी पीठ कर दी और पीठ के बल वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। धीरे-धीरे वह सारी सीढ़ियाँ चढ़ गया। वह छत पर जाकर लुढ़क सा गया। उसका शरीर टूटने लगा उसने प्रभु से प्रार्थना की और रस्से का एक सिरा मोरी के तल में बाँध दिया और दूसरा गले में डाल कर गाँठ लगाली। अपने एक हाथ से बड़ी देर में वह गाँठ लगा पाया।

जब वह यह काम पूरा कर चुका तब उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने एक फालतू आदमी के दुखों के अंत करने में जो सहयोग दिया है, उसके लिये वह उसका अत्यन्त कृतज्ञ है। उसका दिल अपनी लाडली बेटी के लिए अनायास ही तड़प उठा। वह बालक की तरह जोर-जोर से रोना चाहता था पर वह ऐसा नहीं कर सका। धीरे-धीरे उसका मन फिर बेटी के प्यार में उलझकर कमजोर होता गया। उसे महसूस हुआ कि वह अपनी बेटी के जीवन को अपने प्राणों के मोह में सुखी नहीं कर सकेगा। इसलिए वह तुरन्त नल के पीछे की ओर लटक गया। कुछ ही देर तड़फता रहा---कब उसके प्राण निकले यह कोई नहीं जानता। हाँ, मरने के पूर्व उसने अपनी प्यारी बेटी के सुखद जीवन की कामना की, हे ईश्वर ! उसे रॉबिन की दुल्हन बनाकर उनके प्यार को अक्षुण्ण बना दे। वह एक अच्छी बीबी की तरह अपनी उम्र गुजारे, और उसकी पथ-रायी दृष्टि गिर्जे पर जम गयी।

एक मीनार और दो टूटे दिल

मीनार की सीढ़ियों के दरवाजे के आगे पहरेदार के नालदार जूतों की अप्रिय आवाज गूँज रही थी—खट-खट-खट। कभी-कभी वह अपने मन्द स्वर में कोई फिल्मी गीत गुनगुना उठता था। प्रौढ़ावस्था में उस पहरेदार के मुंह से यह घटिया फिल्मी गीत बड़ा विचित्र लग रहा था। लेकिन उसकी मुद्रा से उसकी तन्मयता का अन्दाजा सहजता से लगाया जा सकता था। उसका हिलता हुआ सिर उसके गीत में खो जाने का प्रमाण था।

मीनार के चारों ओर गोलाकार बगीचा था। उस एक विशाल इमली के पेड़ के तने का सहारा लिए हुए एक युवक बैठा था। उसके मुख पर चिन्ता और व्यग्रता के भाव स्पष्ट दीख रहे थे। उसका कुर्ता और पायजामा फटा और मैला था। हाँ, उसके पावों में जो जूते थे, वे बिल्कुल नए और चमकदार थे, जिससे देखने वाले सहजता से यह अनुमान लगा सकते थे कि यह जूते चुराए हुए हैं—किसी मन्दिर के आगे से या किसी दूकान से। युवक के चेहरे की उभरी हड्डियों ने उस की बड़ी-बड़ी आँखों की सुन्दरता को निगलकर उन्हें भयानक बना दिया था और जब उसकी आँखें स्थिर होतीं, तब ऐसा प्रतीत होता था कि इन आँखों में चिनगारियाँ जल रही हों

और वे किसी को भस्म करने को आतुर हों। उसकी बार-बार बन्द होती मुट्ठियाँ उसके अन्तस के आक्रोश और रोष की प्रतीक थी। पेड़ से टकराते सिर से लगता था कि उसके मस्तिष्क का विपुल विद्रोह असफल हो गया है और वह कुछ गड़बड़ कर देना चाहता है। पहरेदार उस युवक पर बार-बार तेज निगाह डाल देता था। वह तेज निगाह प्रश्न भरी होती थी, जिसे वह युवक सहन नहीं कर पाता था। और जब कभी पहरेदार घूमता हुआ उसके पास आकर सीटी बजाने लगता, तब उस युवक के चेहरे पर घृणाभरी रेखाएँ व झुँझलाहट नाच उठती थी। अन्त मे वह बीड़ी पीता हुआ उसके पास आया और बोला, "बीडी पिओगे यार ?"

युवक ने मौन रहकर अपना हाथ बढाया और पहरेदार से बीड़ी लेकर पीने लगा। उसके चेहरे पर गहरा आवेश और आक्रोश था।

पहरेदार ने उस युवक पर उड़ती नजर डालकर अपने आप ही कहा, "अच्छा किया सरकार ने ?".

"क्या अच्छा किया ?" चौंक पड़ा युवक। न चाहते हुए भी उसने पहरेदार को उत्तर दिया। उसकी गहरी धसी आँखों में विस्मय तैर उठा।

"कि अकेले आदमी को मीनार पर चढ़ने नही देती, वर्ना यहाँ हमेशा एक न एक आदमी जरूर मरता।"

"क्यों ?"

"साला जमाना ही कुछ ऐसा आ गया है।" जिसे देखो छोटी-छोटी बात पर यहाँ से मरने को दौड़ा चला आता है, थू !" और उसने घृणा से थूक दिया।

युवक चुप हो गया। पहरेदार लम्बा कश खींचकर पुनः बोला— "मुझे तो तुम्हारे पर भी शक हुआ था कि तुम जरूर कोई गड़बड़ करने आये हो।"

युवक का मुख विकृत हो गया। अपने दोनों होठों के अग्रभागों को अपने दाँतों के बीच भींच कर उसने आग उगलती दृष्टि से उस

पहरेदार को देखा। पहरेदार खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, "ऐसी तेज निगाहें मैं बहुत देख चुका हूँ। हरएक के दिल की बातों को आँखों से भाँप जाता हूँ। यहाँ का बहुत पुराना नौकर हूँ। काफी तजुर्बा हो चुका है।" क्षण-भर रुककर बोला, "सुनो, जब तुम मेरी नजर बचाकर मीनार पर भागे, तभी मैंने समझ लिया था कि तुम कुछ गजब करने आए हो। बोल भी नहीं रहे हो। मत बोलो, पर यह बड़ी देर की लम्बी चुप्पी तुम्हारे दिल के बुरे इरादों को नहीं छिपा सकती?" और वह मौन होकर फिर बीड़ी पीने लगा। वह धुआँ दंभ के साथ आसमान की ओर छोड़ रहा था। कभी-कभी वह गोलाकार धुआँ छोड़ने की भी असफल चेष्टा करता था।

युवक अपने हाथ की बुझी बीड़ी को तोड़ते हुए बड़बड़ाया, "सब बकवास है, जाओ अपना काम करो।"

"मैं बकवास करता हूँ?" वह विस्मय से उसके सन्निकट आकर बोला, "अच्छा, फिर तुम यहाँ क्यों आए थे?"

युवक इस समय सूखी और व्यंग भरी हँसी-हँस पड़ा। दार्शनिक की भाँति भारी स्वर में बोला, "मीनार पर चढ़कर तुम्हारी इस दुनिया को देखने। यह पता लगाने कि इस विराट दुनिया में मेरा अपना क्या अस्तित्व है। मेरे इस छोटे से जीवन का क्या मूल्य है?"

पहरेदार उस युवक की भारी बातें न समझा। अपनी मूर्खता को छिपाने के लिए वह अपने होंठो पर बुझी-बुझी मुस्कान लिए अपनी नियत जगह पर आ गया। युवक दूब को तोड़ रहा था और पहरेदार को प्रश्न भरी दृष्टि से देख रहा था। कभी-कभी, वह दूब के दो-चार तिनके मुँह में दबाकर चबाने भी लगता था।

थोड़ी देर बाद उस युवक ने मीनार की ओर आते हुए एक अन्य युवक को देखा। पहले युवक की नसों में गर्मी दौड़ गई। वह शीघ्रता से उठा और पहरेदार के पास चला आया। व्यंगमिश्रित स्वर में धीरे धीरे बोला, "क्यों पहरेदार साहब, मैं इस आदमी के साथ ऊपर जा

सकता हूँ ? अब तो हम दो गए हैं न ?"

"बेशक ! एक साथ दो आदमी इस मीनार पर बिना किसी रोक-टोक के जा सकते हैं।" पहरेदार ने दूसरी बीड़ी सुलगाई, "सुना भाई, एक साला हरामी 'अनोखे' था। खुद बदमाश छिनाल छोकरियों के पीछे भागता था, पर जब उसकी बीवी ने एक नौ हत्थे जवान से नजर लड़ाई, तब साला आँख बचाकर ऊपर से कूद पड़ा। मर्द जात भी बड़ी अजीब होती हैं। चित भी अपनी और पट भी अपनी रखना चाहती है।"

दूसरे युवक की आकृति अब दिखाई पड़ने लगी थी। वह बहुत धीरे-धीरे आ रहा था। अच्छे कपड़ों एवं बिखरे बालों में वह आधुनिक मजनूं सा लगता था। उसके उठते हुए रह-रहकर कदम उसके टूटे दिल की दास्तां सुना रहे थे।

पहला युवक प्रश्न भरी दृष्टि से अब भी पहरेदार की तरफ देख रहा था, मुस्करा रहा था। अन्त में वह युवक बोला, "ऊपर चढ़कर देखूँगा तुम्हारी इतनी बड़ी दुनिया में क्या-क्या है ?"

"क्या तुम अभी पैदा हुए हो ?" पहरेदार ने जिज्ञासा से पूछा।

"जब किसी आदमी के मन में एक नया बुलन्द विचार आता है, तब उसे ऐसा मालूम होता है कि उसने नया जन्म पाया है। उसके लिए उसकी प्रत्येक चिरपरिचित वस्तु अपरिचित और अनोखी बन जाती हैं।"

पहरेदार इस बार भी उसके भारी-भरकम विचारों को नहीं समझ सका। वह सर्वथा मौन रहा।

दूसरा युवक मीनार की सीढ़ियों के दरवाजे पर लड़खड़ाता हुआ आया। पहरेदार की ओर बिना देखे ही ऊपर चढ़ने लगा कि पहरेदार ने दूसरे युवक को आज्ञा भरे स्वर में कहा, "ठहरो ! अकेले-अकेले जाना गैर कानूनी है। तुम इस युवक के साथ जा सकते हो। देखो, कोई गड़बड़ी मत करना। अभी तक मेरे पहरे में दो आदमी ही आत्महत्या कर पाए हैं, बाकी किसी को भी कामयाबी नहीं मिली। शेष पहरेदारों का हिसाब

बहुत खराब है। किसी के पाँच और किसी के दस।" पहरेदार ने अपनी मूछों पर ताव दिया।

दूसरे युवक ने उसे एक पल के लिए देखा और बिना कुछ कहे वह सीढ़ियों की ओर बढ़ गया। पहरेदार ने मुँह बिचकाकर कहा, "आज किसी भी आने वाले का मूड अच्छा नहीं है। भागो, तुम भी उसके साथ, देख आओ कि यह दुनिया कितनी बड़ी है?"

पहला युवक भी लपक कर सीढ़ियों पर चढ़ गया।

सीढ़ियों पर घोर अन्धेरा था। पर हर घुमाव पर एक छोटी-सी खिड़की थी। पहले युवक ने, जिसके मुख की व्यग्रता और असंतोष कुछ कम हो गया था, एक घुमाव की खिड़की के प्रकाश में दूसरे युवक के असंवेदना से दहकते हुए चेहरे को देखा तो उसके अधरों पर शंका की एक मुस्कान थिरक गई। दूसरे युवक ने अपनी गति को धीमा किया और अपने अगले बालों के एक गुच्छे को जोर से पकड़ते हुए उसने पहले युवक की ओर देखा तथा अपने समूचे शरीर को एक विचित्र झटका दिया।

पहले युवक की नजर एक पीछा करने वाले की भाँति झुक गई। वह एकदम गम्भीर हो गया। फिर जाने क्यों सीटी बजाने लगा?

दूसरा युवक धीरे-धीरे घुमाव पार कर रहा था। मीनार का गुम्बद नजदीक आ रहा था। अप्रत्याशित दूसरा युवक एकदम रुक गया। उसके रुकते ही पहला युवक एक झटके के साथ उसके पास आ गया। दोनों की नजरें एक हुई और दोनों ने अपने-अपने चेहरे के उग्र भावों एवं घृणा भरी दृष्टि से एक-दूसरे का अपमान किया। फिर दोनों चले अत्यन्त धीरे-धीरे, एक-एक कदम को अत्यन्त नाटकीयता से उठाते हुए।

गुम्बद आ गया।

ढलता सूरज गुम्बद के सबसे ऊपर के शिखर का चुम्बन ले रहा था। मीनार की छाया धरती पर पौराणिक दैत्य-सी पड़ रही थी। कई क्षण दोनों मीनार के कटघरे का सम्बल लेकर दुनिया को देखते

रहे, फिर दोनों ने नीचे की ओर झाँका। पहरेदार, जिसका आकार अत्यन्त छोटा दिखाई दे रहा था, अपनी मूछों को ताव दे रहा था, ऐसी उन दोनों की दृष्टि का अनुमान था।

फिर दोनों युवक एक-दूसरे को शंका भरी दृष्टि से देखते रहे। एक-दूसरे पर सजग प्रहरी के समान नजर रखते रहे और समझते रहे—दोनों के अन्तर के जलते प्रश्नों को।

सूरज ढल गया। अन्धेरे के पंख फैलने लगे। दोनों युवक लम्बी आहें छोड़कर, एक-दूसरे को देखते हुए नीचे उतरने लगे। जब वे पहरेदार के पास पहुँचे, तब पहले व्यक्ति ने मुस्कराकर कहा, "सचमुच दुनिया प्रयोजनहीन नहीं है। आदमी को लड़ना चाहिए, आत्महत्या एक पाप है, क्यों भाई?" उसने दूसरे युवक से पूछा।

दूसरा युवक बड़ी सफाई से बोला, "मूर्ख लोग आत्महत्या करते हैं।"

पहले युवक ने पूछा—"क्यों भाई, बीड़ी है?"

"बीड़ी तो नहीं, सिगरेट है।" दूसरे ने जवाब दिया। दोनों साथ-साथ सिगरेट पीने लगे। सिगरेट के साथ उनकी बातचीत बढ़ी। और बातचीत के साथ मित्रता।

पहरेदार ने मीनार के भारी दरवाजों को बन्द किया और गुनगुनाता हुआ जाने लगा।

× × ×

दूसरे दिन सवेरे।

वे दोनों युवक, जो कल सन्ध्या के समय एक दूसरे को आत्महत्या करना 'पाप' और 'बुरा' बता रहे थे, नए सूरज के ताजे और मनोहारी प्रकाश में अपनी-अपनी जेबों में पड़े पत्रों को पढ़ने लगे। दोनों अपने-अपने पत्र को फाड़ने के पूर्व अन्तिम बार पढ़ना चाहते थे। पहले युवक ने जैसे ही पत्र खोला, तो चौंक गया। उसके मुँह से सहसा निकला "हूँ! यह क्या, कल नशे में पत्र ही बदल गए?" तब उसने दूसरे युवक के पत्र को खोलकर पढ़ा। लिखा था—

प्रिय रोमी,

तुम मेरे जीवन की मधुर धड़कन और नयनों की ज्योति हो पर यह बेरहम समाज हम दोनों को मिलने नहीं देता। मेरी मृत्यु के बाद तुम अपने जीवन को व्यर्थ मत खोना और मुझे भूल जाने का प्रयास करना। चाहो तो तुम किसी और से विवाह कर सकती हो। मेरे हृदय में तुम्हारा प्यार सदा बासन्ती फूल की तरह रहा है और मृत्यु के बाद भी रहेगा।

तुम्हारा अभागा प्रेमी

—सागर

पहले युवक ने पत्र को फाड़ते हुए कहा, "कम्बख्त कहता था कि आत्महत्या मूर्खता है।" और उसके होठों पर जीवन भरी मुस्कान दौड़ गई।

× × ×

दूसरे युवक ने भी विस्मय के साथ पहले युवक के पत्र को पढ़ा।

मेरे साथियो,

मैं ग्रेजुएट हूँ और निरन्तर तीन वर्षों की बेकारी से तंग हूँ। और सिफारिश के अभाव में मुझे कहीं भी काम नहीं मिल रहा है।...... मैं गत तीन दिनों से भूखा भी हूँ, जीवन के सारे रास्ते बन्द हो गए हैं। इसलिए 'मीनार' पर चढ़कर आत्महत्या कर रहा हूँ। मेरे बाद किसी को भी न सताया जाए। मेरी आखिरी इच्छा है कि देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो और आर्थिक विषमताएँ मिटें।

दूसरे युवक ने पत्र को फाड़ते हुए कहा, "झूठा कहीं का! आत्म-हत्या को पाप बता रहा था।" और उसके अधरों पर वैसी ही जीवन भरी मुस्कान दौड़ गई।

दूसरे की हार देख कर अपनी हार विजय में परिणत हो गई थी।

टूटे हुए इन्सान

धीरे-धीरे उसने अपने किराये के मकान की दहलीज पर कदम रखा। उसकी इच्छा हुई की दम भर के लिये सीढ़ियों पर बैठ जाय, पर सीढ़ियों पर धूल बिखरी हुई थी और पानी के सूखने पर कई अजीबो-गरीब चित्र बन गये थे। वह बेमन सीढ़ियाँ चढने लगा। एक बार उसने अपनी आदत के अनुसार खँखारा और पेंट की जेब से मैला-सा रूमाल निकाल कर गर्दन पर बहते हुए पसीने को पोंछा।

उसका रंग काला था और व्यक्तित्व प्रभावहीन। अगर चेहरा थोड़ा और पतला होता तो उसकी समता कम से कम नाक को लेकर कौवे की चोंच से अवश्य की जा सकती थी। फिर भी उसके जिगरी-यार उसे मजाक से 'कागदास' कहते ही थे।

तोरण द्वार पर वह क्षण भर के लिए रुका। हल्की अँगड़ाई-सी ली। फिर टायर के तलुवे की ढाई रुपये की चप्पल को जोर से झाड़ा। हल्की-सी रेत उड़ी और उसने अपने बड़े लड़के को पुकारा, 'मुन्ना, ओ मुन्ना !'

'क्या है !' मुन्ना दाल से सने हाथों को चाटता हुआ आया। अब वह बाहरवाली बैठक में बैठ गया था। मैली-सी चादर से ढँका एक फटा-पुराना बिस्तर बिछा था। उसने पैंट-कमीज

खोल कर अपनी बीवी की साड़ी को तहमद के रूप में लपेट लिया था और चारमीनार सिगरेट निकाल कर होंठों से लगा ली थी।

'मुन्ने, जा माचिस ला!'

मुन्ना पूर्ववत उँगलियाँ चाटता हुआ चला गया।

फिर उसने पुराने तकिये का सहारा लिया और विचारमग्न हो गया। मुन्ना माचिस ले आया था। उसने सिगरेट जलायी। दो-चार लम्बे कश खींच कर उसने आवाज लगायी, 'मुन्ने, मम्मी को जा कर कहना चाय बना दे।'

उसकी मम्मी सरस्वती ने अपनी पतली आवाज में भीतर से ही कहा, 'मैं चाय बना कर लाती हूं।'

वह ध्यानमग्न-सा सिगरेट फूँकता रहा। पहली सिगरेट समाप्त हो गयी थी। दूसरी उसने अपनी सिगरेट द्वारा जला ली। गुल एक टूटी हुई प्लेट में इकट्ठा हो रहा था। धुआँ पार-खिड़की के न होने की वजह से ऊपर कई छिद्रों में उड़ रहा था। जिससे घुटा-घुटा वातावरण हो गया था।

चाय की गन्दी-सी मोटी प्याली रखते हुए सरस्वती ने पूछा, 'सब्जी लाए?'

'नहीं भाई, भूल गया।' उसने चाय की चुस्की की और सिगरेट का धुआँ बाहर की ओर छोड़ा, पर हवा विपरीत होने की वजह से वह वापस बैठक में आ गया। घुटन और बढ़ गयी।

सरस्वती ने मुँह फेर लिया और उत्तप्त स्वर में बोली, 'सब्जी नहीं लाये फिर मैं बनाऊँगी क्या? जाइए और मुझे बाजार से सब्जी ला कर अभी दीजिए।'

'देखो सरो, मुझे तंग मत करो। जो हो बना दो। अब ऐसी थकान में मुझसे बाजार नहीं जाया जा सकता। थक गया हूं, बुरी तरह। दफ्तर में बहुत काम था। सिर में दर्द भी है। दाल बना लो।'

'हमेशा-हमेशा की दाल मुझको अच्छी नहीं लगती।' इस बार उसके स्वर का अंदाज बदल गया था। वह रूठी हुई सी लग रही थी, 'तीन

दिन से दाल बना रही हूँ। पर आज मैं दाल नहीं बना सकती।'

आनंद ने सिगरेट का अन्तिम कश लिया। उसे बाहर फेंकते हुए उसने कहा, 'मैं अभी नहीं जा सकता। मेरे सिर में दर्द है।'

सरो भी बिगड़ गयी, 'मैं खुद बाजार में ले आऊँगी। आप इस तीन माह की बच्ची को सँभाल लीजियेगा।'

सरो क्रोध में फुँफकारती-सी भीतर गयी। उसकी मुद्रा कठोर और लाल हो गयी थी। पलक झपकते वह अपनी तीन माह की बच्ची को कपड़े में लपेट कर उठा लायी। उसे फेंकने का अभिनय करती हुई वह बोली, 'मैं बाजार जा रही हूँ। मुझे पैसा दीजिए। मैं सदा वह चीज नहीं खा सकती हूँ, जिससे मुझे सख्त नफरत हो। मैं कहती हूँ कि आप बीच बाजार से आते हैं, फिर सब्जी क्यों नहीं लाते?' वह अब बहुत ही आवेग-आवेश से भर उठी थी, 'आप मुझे किसी तरह का सुख नहीं देना चाहते। केवल सताना चाहते हैं। सताइए, जी खोल कर सताइए।' वह अपनी बच्ची को ले कर रोती हुई भीतर चली गयी।

आनंद टूटे हुए इन्सान की तरह चाय को जल्दी-जल्दी पी कर खड़ा हुआ। नापसे कपड़े पहने। क्षण भर वह अपनी साइकिल के पास खड़ा हुआ। साइकिल का पिछला ट्यूब एकदम खराब हो गया था। कई बार चिपकाया था, पर अब चिप्पियाँ ठहर ही नहीं रही थीं। दूकानदार ने भी साफ-साफ कह दिया था, 'बाबू जी अब इस पर चिप्पियाँ चिपकाने के पैसा फिजूल खर्च कर रहे हैं। ये ठहरेंगे तो नहीं। आप ट्यूब ही बदलवा लेते?'

किंतु उसके पास पैसा नहीं है। इधर उसका जीवन जहरीली हवाओं के बीच साँसें ले रहा है। इन दो वर्षों में कभी उसने चैन की साँस नहीं ली। धुआँ! पीड़ादायक बादल! क्षण भर के लिए भी चाँदनी नहीं।

वह थैला ले कर चल पड़ा।

आँधी के उड़ते पत्तों की तरह विगत की घटनाएँ उड़-उड़ कर उसके मन के पास आयीं और चली गयीं।

वह सरकारी दफ्तर में एल० डी० सी है। नब्बे रुपये लाता है। बहुत भावुक है और उसकी भावना सपनों के चारों ओर लिपटी रहती है। उसकी महत्त्वाकांक्षा को उकसाती रहती है। उसे प्रेरित करती है, अपनी कल्पनाओं को साकार करने को।

जब वह स्कूल में था, तब बहुत अच्छा अभिनय करता था। वह विदूषक बनता था और दर्शकों को अपने हास्य अभिनय से खूब हँसाता था। उसके शहर में पेशेवर नाट्य-पार्टियाँ भी कभी-कभी उसे अपनी मंडली में शामिल करती थीं। उसका सम्मान और आदर करती थीं। फिर उसने मैट्रिक पास किया। विवाह किया। तीन बच्चे भी हुए। सपनों और परिस्थितियों में संघर्ष हुआ। नौकरी करके माँ-बाप से दूर, पराये शहर में आ गया।

माँ-बाप को एक वर्ष तक एक पैसा भी नहीं भेजा। अलबत्ता जब वह बहुत ही तंगी में हुआ तो बच्चों व पत्नी को घर जरूर भेज दिया करता था। परिणाम स्वरूप माँ का स्नेह भी उसने खो दिया। एक बार माँ ने साफ-साफ लिख भी दिया कि अपनी बीवी और बच्चों को मेरे पास मत भेजा करो, मेरे पास धन का कुआँ नहीं है जो उसमें से रुपये निकाल-निकाल कर तुम लोगों को खिलाती रहूँ।

और इस घटना के शीघ्र बाद उसने नौकरी छोड़ दी। वह एक नाटक मंडली में सम्मिलित हो गया। दो माह के बाद वह मंडली टूट गयी और आनंद ने बड़ी अनुनय-विनय और दौड़-धूप के बाद पहले वाली नौकरी वापस पायी।

लेकिन आकांक्षाएँ उसके कल्पना लोक में छाती रहीं। अपने आप से तीव्र असंतोष लिये हुए वह जी रहा था। सुबह-शाम वह दफ्तर जाता और घर में आकर पड़ जाता। उसे हर घड़ी लगता कि उसके जीवन में तनाव ही तनाव है और हर पल मुर्दा है, इतना मुर्दा कि उसमें सहजता से रहा भी नहीं जा सकता। और वह सोचता है कि हम सभी मुर्दा हैं, इतने मुर्दे कि हममें अपने जीवन्त सुखी क्षणों को प्राप्त करने की

लालसा ही नहीं है ।

बाजार पहुँच गया । उसका ध्यान भंग हो गया । उसने बेमन सब्जी ली और वापस घर की ओर चल पड़ा ।

वह धीरे-धीरे ऊबड़-खाबड़ सड़क पर चला जा रहा था । कैसा है उसका जीवन ? न उल्लास और न खुशी !

एकदम बंजर भूमि की तरह अनुपयोगी ।

और एकाएक उसे अपना बम्बइया दोस्त संतोष मिला । बोला, 'तुम्हें ही ढूँढ रहा था । खूब मौके पर मिले ।'

'क्यों ?'

'आज रिहर्सल में चलना है ।'

'कितने बजे ?' आनंद उत्साह में भर आया । उसकी बुझी-बुझी आँखों में एकाएक आग की चिनगारी-सी जली ।

'ठीक दस बजे ।'

'कहाँ ?'

'नाट्य मंडल के दफ्तर में ।'

और वह ठीक दस बजे नाट्य मंडल के दफ्तर पहुँचा । संतोष ने उसकी बड़ी आवभगत की । उसे अपने साथियों से परिचय करया । उसे हीरोइन 'दया' से मिलाया । दया ने अर्थ भरी मुस्कान से उसका स्वागत किया, 'लोग कहते हैं कि आप यहाँ के ए-वन कामेडियन हैं ।'

आनंद लज्जा से सिकुड़ गया । गर्दन नीची करके वह बोला, 'आप मुझे शर्मिंदा करती है ।'

'अबकी बार मैं आपका अभिनय देखने दिल्ली से यहाँ आऊँगी । मेरा अभिनय तो इस नाटक में आप देखेंगे ही ।'

और आनंद ने अपने मित्र संतोष से प्रार्थना की, 'भाई मुझे भी इस नाटक में जरा-सा पार्ट दे दो । मैं अपनी जान लगा दूँगा—अपने पार्ट में ।'

लेकिन संतोष ने उसे कोरा उत्तर दे दिया । उसने सिगरेट का कश खींच कर कहा, 'इस नाटक में मेरे बाहर के दोस्त काम करेंगे । मैं मज-

पूर हूँ । मैं अपने साथ अपने बम्बई के कलाकार दोस्त लाया जो हूँ ।'

पर आनंद सदा रिहर्सल में आता था । दया से खूब घुल-मिल कर बातें करता था । दया ने दो-तीन बार उसे अपने घर से भी बुलाया था । उसे लगा—धरती लहलहा उठी । ठूंठ हरे होने लगे हैं । उसके चारों ओर दूधिया चाँदनी बिखर गयी है ।

इस नाटक में पूरे सात सौ का लाभ हुआ । दया ने जाते-जाते आनंद से कहा, 'आप कीजिए न नाटक ? आप एक ऐसा नाटक लिखिए जिसमें मैं हीरोइन और हीरो आप हों । कामिक के ऐसे चुभते टचेज हों कि पब्लिक उछलने लगे ।'

और सचमुच आनंद रंगीले सपने देखने लगा । एकांत क्षणों म उसके मन में दया को ले कर द्वन्द्व चलता रहता था और उसके कल्पना लोक में यह दृश्य बार-बार उभर आता था कि वह दया के साथ हीरो बना है । इससे उसे आंतरिक सुख मिलता था । कितनी मधुर कल्पना ? वह कब पूरी होगी । होगी भी या नहीं ? वह भँवर फँसी नाव की तरह असहाय हो जाता और उसे लगता कि उसका जीवन व्यर्थ है ? वह कैसे पीड़ित जीवन से निष्कृति पाये ? तब वह उदास हो जाता और उसके चारों ओर विषमताओं के घेरे छा जाते । दशा मकड़ी के जाले में फँसे छोटे-से कीड़े की तरह हो जाती । वह कुछ भी नहीं कर पायेगा ।

बीवी अपने मायके चली गयी थी ।

आनंद घर में अकेला था । उदास और घुटा-घुटा-सा । संतोष आया । बोला, 'दया का पत्र आया है । तुम्हें वह खूब याद करती है । पूछा है कि वे कब अपना ड्रामा करेंगे ?'

आनंद ने निश्वास छोड़ कर कहा, 'इच्छा मेरी भी बहुत है कि मैं एक नाटक करूँ ? एक बार अपना आर्ट लोगों को सही रूप में बताऊँ पर पैसा कहाँ से लाऊँ ?'

'तुम तीन-चार सौ का प्रबंध कर लो । फिर सब ठीक हो जायगा ?' संतोष ने चुटकी बजा कर कहा ।

'मैं तीन सौ रुपयों का प्रबन्ध नहीं कर सकता ?'

'हिम्मत न हारो। कम से कम पाँच सौ के लाभ का मैं ठेका लेता हूँ। कहीं से उधार नहीं मिल सकता।'

'नहीं !'

संतोष ने उलाहना दिया, 'तुम इसी चक्की में ही उम्र भर पिसते रहोगे ? करो कलर्की और मरो।'

वह नाराज हो चला गया।

रात बहुत काली थी। बादलों के कारण तारा भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। अँधेरा, घोर अँधेरा ! फिर दो घंटे के लिये बिजली चली गयी। सब शहर में आदिम युग का तिमिर छा गया।

वह माचिस ढूँढ़ने लगा। वह सन्दूक से मोमबत्ती निकाल कर जलायेगा ? उसने संदूक खोला। मोमबत्ती के साथ उसे अपनी पत्नी की सोने की जंजीर हाथ लगी।

मोमबत्ती का प्रकाश अब कमरे को मद्धिम रूप में अवभासित कर रहा था। संदूक में दो-चार साड़ियाँ पड़ी हुई थीं। उसने सारे कपड़ों को उथल-पुथल कर रख दिया। छोटे-छोटे कुछ जेवर थे—उसकी पत्नी के।

उन जेवरों को देखते ही उसके मन में एक विचार आया। कुछ परिचित दोस्त उसकी आँखों के आगे नाच उठे। दया भी उसे सहसा याद हो आयी।

जेवर उसके हाथों में थे और उसकी आत्मा की तृष्णाएँ उसके आगे झूल रही थीं।

'इन जेवरों को गिरवी रख कर मैं एक नाटक खेल डालूँ। पाँच सौ का लाभ हो तो एक मंडली बना डालूँगा। फिर पैसा ही पैसा है। दया साथ रहेगी। कितना सुखी जीवन होगा ? वह इसी तरह भी उधेड़बुन में खोया रहा।'

सुबह होते ही उसने निर्णय किया कि उसकी पत्नी तो पूरे डेढ़ माह के बाद लौटेगी, तब तक नाटक खेल कर सारा काम पूरा कर लेगा

उसकी पत्नी भी उसके कार्य की तारीफ करेगी और वह उसके लिए एक अच्छी-सी सोने की अँगूठी लाभ के रुपयों की बना कर रखेगा। वह सुख के सपनों में झूलता रहा। झूलता रहा।

उसने उस दिन दफ्तर से छुट्टी ले ली। वह संतोष के पास गया। उसे अपनी योजना सुनायी।

संतोष की आंखों में खलनायक की चमक दीस हो उठी। दुष्टता भरी मुस्कान बिखेरता हुआ वह बोला, 'पैसा बरस पड़ेगा। कामिक के तुम बादशाह हो और दया रूप की मल्लिका है। दोनों की जोड़ी खूब रहेगी।'

और आनंद ने बड़ी मेहनत से एक नाटक लिखा। जैसी योग्यता वैसा नाटक! हर रात को अभिनेता संतोष अपनी मित्र मंडली को इकट्ठा करके खूब चाय-पान उड़ाता था। धीरे-धीरे पूँजी आधी रह गयी। एक दिन चिन्तित स्वर में आनंद ने पूछा, 'संतोष दो सौ रुपयों में से सौ ही बचे हैं। नाटक कैसे होगा?'

'तुम इसकी चिंता मत करो। कल पचास रुपये दया को एडवांस भेज दो और उसे लिख दो कि हमारा तार पाते ही वह चली आये।'

यह भी काम हो गया। नाटक की तारीख भी तय हो गयी। दो दिन पहले तार दे दिया गया। उसने जवाब दिया, 'दो सौ रुपये पहले भेज दो।'

आनंद के पाँवों के नीचे से जमीन खिसक गयी। वह संतोष के पास गया। संतोष ने गंभीर हो कर कहा, 'साली ने धोखा दे दिया। इन अभिनेत्रियों की कोई जात नहीं होती। कब पलट जायें? मुझे ऐसा गुस्सा आता है कि जा कर साली को पीटूं।'

'भाई, अभी इन बातों से कोई फायदा नहीं। अभी तो कुछ करो, मेरी बीवी के जेवर गिरवी हैं।' उसने रुआंसे स्वर में कहा, 'मैं बरबाद हो जाऊंगा, संतोष! मैं अपनी बीवी को अपना मुँह नहीं दिखा पाऊंगा।'

संतोष ने साफ पल्ला झाड़ते हुए कहा, 'मैं क्या कर सकता हूँ।

तुम मेरी सब बातें जानते ही हो। बड़ी कड़की में हूँ। अब कहीं से तीन सौ रुपये लाओ तो काम बने, वर्ना तुम्हारे साथ मेरी भी इज्जत मिट्टी में ही मिलेगी।'

आनंद की आंखों में अँधेरा छा गया। व्यथा की तीव्रता के कारण जबान तालू से सट गयी। वह सिर पकड़ कर बैठ गया। वह क्या करे? नाटक नहीं होगा तो उसकी बीवी के सारे जेवर बिक जायेंगे और उसकी शहर में बड़ी बदनामी होगी? वह क्या करे? वह कहां से रुपये लाये?

उसके मन की सारी घाटियां अदृश्य हो गयीं।

वह टूटा-टूटा-सा घर आ गया। उसने बचे हुए पैसों में से चार पैकट चारमीनार सिगरेट के खरीदे और रात भर उन्हें फूंकता रहा।

नाटक नहीं हुआ। जेवर गिरवी के गिरवी रहे। पत्नी भी लौट आयी। खूब परस्पर झगड़ा हुआ और अंत में जीत भी आनंद की हुई। पत्नी रो-धो कर चुप हो गयी। किन्तु आनंद ने कुछ दिनों बाद महसूस किया कि अब उसकी पत्नी का स्वभाव एकदम बदल गया है। वह उसका जरा भी विरोध नही करती है। कभी भी उसके सुख-दुख के बारे में नहीं पूछती है। केवल उसकी आज्ञा को पूरा करती है। एक दिन नहीं, पूरे सात-सात दिन तक दाल खाती है। कपड़ों में साबुन नही लगाती है। एकदम मुर्दा इन्सान! एकदम मुर्दा व्यवहार! हर बात में मौन स्वीकृति! वह घबरा उठा है। वह यह सब नहीं सह सकता। यह अखंड मौन और स्वीकृति उसके जीवन की क्षणिक सरसता भी छीन लंगे तब, तब उसकी इच्छा होती है कि उसकी पत्नी उससे झगड़े, टोके, उलाहने दे, भर्त्सना करे। वह उसे डाँटता भी है पर उसकी पत्नी चुप रहती है, एकदम चुप! पत्थर की मूर्ति की तरह मौन।

तब वह झुँझला कर कहता है,'सरो, मैं मर जाऊँगा, मर जाऊँगा। तुम कुछ बोलती क्यों नहीं। मै तुम्हारा यह रूप नहीं सह सकता। तुम मुझे पागल कर दोगी, पागल!'

सरो का मन भर गया है। उसमें कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती है। वह खामोश रहती है और आनंद परेशान। जीवन इसी घुटनदार आवर्त में सिसकता हुआ गुजर रहा है, गुजरता रहेगा।

और कभी-कभी सरो भी चिढ़ कर कहती है, 'आप मुझे अधिक तंग न करें। मैं बहुत खुश हूँ, खुश! आप विश्वास क्यों नहीं करते?'

और दोनो प्राणी समुद्र के अंतर में डूबे जाते हैं जैसे उनके चारों ओर मुर्दा क्षण जीवित हो गये है और उन्हें अपने में लील रहे हैं, और वे इतने टूट गये हैं कि उन्हें मिटा नहीं सकते।

एक इन्सान की मौत एक इन्सान का जन्म

कालेज स्ट्रीट के बस स्टैंड पर, जहाँ सन्ध्या का हल्का-हल्का अंधेरा छाने लग गया था, वहाँ अनेक लड़कियाँ बगल में पुस्तकें दाबे खड़ी थीं। वे प्रायः हैंडलूम की ही साड़ियाँ पहने हुए थीं और उनके चेहरों पर आपसी हँसी-मजाक से उत्पन्न ताजगी दिखाई पड़ रही थी। लड़कियाँ बंगला में बात-चीत कर रही थीं। कभी-कभी लम्बे कदवाली एक काली सी लड़की अंग्रेजी में फर्राटे से बोलकर सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। मैं भी उस झुण्ड को निहारता रहा। न जाने कितनी बसें आईं और गुजर गईं, क्योंकि उस स्थान से जाने वाली प्रत्येक बस मेरे गंतव्य स्थान को जाती थी।

एकाएक एक भारी हाथ पीछे से मेरे कन्धे पर पड़ा। मैं एकदम चौंका। हठात घूम कर देखा—प्रह्लाद था। उसकी दृष्टि और मुस्कान दोनों में रहस्य भरा हुआ था। वह कुछ क्षण तक मुझे उसी दृष्टि से देखता रहा और मैं इस अप्रत्याशित मिलन के कारण स्तब्ध हो गया। मुझ से कुछ बोला नहीं गया।

तभी उसने उसी मुसकान के साथ कहा—"पहचाना नहीं मुझे ?" और वह नितान्त सहज मुद्रा में हो गया।

"तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ ?" मैंने गहरी आत्मीयता से

गम्भीर स्वर मे कहा, "तुम्हारे साथ मेरे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण क्षण गुजरे है। बताओ, आजकल क्या चल रहा है ?"

"कुछ नही।" उसने तुरन्त कहा।

"क्या मतलब ?"

"बस, कुछ नही। कोई काम तुम्हारे ध्यान में हो तो बताना आज-कल मैं बर्डा तंगी मे हूँ।" और वह मुझे समीप के एक रेस्तरां में चाय पिलाने को ले गया।

हम दोनों गिलासों में बहुत ही कड़क चाय पीने लगे। मैंने अपनी दृष्टि रेस्तरां में लगे किसी बंगाली चित्र के मैले पोस्टर पर जमा कर पूछा, "फिर तुम्हारे उस साप्ताहिक का क्या हुआ ? उस प्रेरा का क्या हुआ ?"

उसके चेहरे पर संकोच की रेखाएँ दौड गई। अब मेरी दृष्टि बहुत पैनी और तेज हो गई थी तथा उसके मुख पर अपलक जमी हुई थी। वह इधर-उधर ताकने लगा और उसने झट से चाय का जलता हुआ एक बड़ा घूँट लिया, जिससे उसकी आँखों में पानी तैर आया। अपने रूमाल से अपनी आँखों को पोंछता हुआ वह बोला, "सभी कुछ चला गया चन्द्र भैया, सभी कुछ। अब तो यह शरीर रह गया है, और इन्सान का शरीर जिसमें पुरुष का, उसकी फूटी कौडी भी नही उठती।" वह क्षण भर रुका और मेरी ओर देखता हुआ व्यथापूरित स्वर से बोला, "कोई काम दिलाओगे न ? तुम्हे शायद यह मालूम नहीं है कि मुझे टाइप भी करना आता है! मेरी स्पीड ४०-४५ की है।"

मैंने उससे प्रश्न किया, "लेकिन तुम तो घर के अमीर हो। तुम्हारे अपने घर का बड़ा व्यवसाय है, फिर ऐसी दिक्कत क्यों ?"

वह चुप रहा। मेरी अर्थ भरी दृष्टि उस पर जमी हुई थी। चाय के गिलास खाली हो गए थे। वह हठात उठता हुआ बोला, "छोड़ो इन बातों को। बताओ, तुम कलकत्ता कितने दिन और रहोगे ? बड़े सालों के बाद आए हो ? शायद चार-पाँच साल बाद।"

"पूरे छह् साल बाद। आधा युग बीत गया है। समय की रफ्तार भी कितनी तेज है? ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने कलकत्ते को कल ही छोड़ा है।"

हम दोनों बाहर आ गये। थोडी दूर पर कालेज स्ट्रीट का पार्क था। हम दोनों धरती का मजा लेकर चल रहे थे। अधूरी बात ने मेरे मन में उत्कंठा पैदा कर दी थी। मैंने उससे प्रश्न किया, "नहीं भाई, बात क्या है, यह मुझे बतानी ही होगी। यदि तुम आनाकानी करोगे तो मैं भूत की तरह तुम्हारे पीछे लग जाऊँगा और सारी रात तुम्हारा पीछा नही छोड़ूँगा।"

"बात यह है चन्द्र, अभी मुझे एक जरूरी काम से जाना है। मैंने अपने एक मित्र को समय दे रखा है। उससे मुझे कुछ रुपए लेने हैं।"

"यह प्रोग्राम तुम्हारा फेल ही समझो। जब तक तुम मुझे सही स्थिति से अवगत नहीं कराओगे तब तक मैं तुम्हारा पिंड नहीं छोड़ने वाला हूँ। यह रात है और मैं हूँ। भूत की तरह पीछे लगा रहूँगा।"

"तुम जिद न करो। मुझे जाने दो।"

"नहीं जाने दूँगा।" मैंने बालक की तरह हठ करके कहा, "समझ में नहीं आता, आखिर तुम मुझ से कोई बात छुपाते क्यों हो? जरा पिछले दिनों को भी याद करो, सचमुच प्रह्लाद तुम बहुत बदल गए हो?"

पार्क के पास हम दोनों आ गए थे। अंधेरा गहरा हो गया था। पार्क की कुर्सियों पर थके-हारे युवक-युवतियाँ बैठी थी। सरकारी बत्तियों का पड़ता हुआ प्रकाश उनके चेहरों की उदासियोंको स्पष्ट कर रहा था। मेरा अनुमान था कि इस बड़े नगर में वे ही इन बगीचों की बेंचों तथा कुर्सियों पर बैठते हैं जिनके पास होटलों में खर्च करने के पैसे नहीं होते। उड़े-उड़े चेहरे घूमते रहे मेरे आगे।

ट्राम की गड़गड़ाहट ने मेरा ध्यान भंग किया। हम दोनों ठीक लैम्प-पोस्ट के नीचे थे। प्रह्लाद का चेहरा झुंझलाहटजनित विवशता से

भरा हुआ था। वह कुछ खीझ कर बोला, "भाई, यह तुम्हारी बड़ी ज्यादती है ?"

"कुछ भी समझो।" मैंने उसकी ओर बिना देखे ही कहा, क्योंकि मैं मन ही मन अपने इस व्यवहार को बड़ा अशिष्ट समझ रहा था।

"तो फिर सुनो।" उसने जल्दी से अपनी दृष्टि इधर-उधर दौड़ाई। लैम्प-पोस्ट के नीचे कोई नहीं था। थोड़ी दूर पर पार्क से सटे दो युवक अपनी बातचीत में तन्मय थे। प्रह्लाद ने गुस्से से कहा, "मैं जुआरी हूँ। मैं जुआ खेलता हूँ। आज मुझे एक आदमी को पैसे देने हैं, अगर नहीं दूँगा तो मेरी इज्जत धूल में मिल जायगी, समझे। अब मैं चलता हूँ, समय हो गया है।" और वह भाग कर चलती बस में चढ़ गया।

मेरे समक्ष लैम्प-पोस्ट का प्रकाश अंधेरा बन गया। विमूढ प्राणी की तरह मैं निश्चल निस्पंद खड़ा रहा। प्रह्लाद मेरे मन में प्रश्नों का तांता लगा कर चला गया। उसकी बस मुझसे बहुत दूर निकल गई थी, अतः मैं निरुपाय-सा कुछ देर खड़ा रहा।

फिर मैं धीरे-धीरे कदम उठाता हुआ सड़क पर चलने लगा। घर पहुँच कर अनिच्छा से कुछ खाया और पड़ गया। बिस्तरे पर करवटें बदलता रहा। बार-बार सोचता रहा, पत्रकार बनने वाला यह प्रह्लाद जुआरी कैसे बन गया ? इसने अपना सर्वस्व जुए में उड़ा दिया ? मन को विश्वास नहीं हुआ। लगता था जैसे सभी कुछ मिथ्या हो। स्वप्नवत घटित घटना की तरह। शायद मुझे कोई भ्रम हो गया हो। इसी उधेड़-बुन में मैं सो गया।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह मैं प्रह्लाद के घर गया। वर्षों के बाद गया था, इससे उसके बाप ने मुझे पहचाना नहीं। उसके पिता अपनी राजस्थानी पगड़ी को बाँधते हुए बाहर आए और कड़क कर बोले, "कहिए, आपको कितने रुपए लेने हैं उससे ? कितने की चिट्ठी (हैंड नोट) लिखवाई है ? पर मैं आपको साफ-साफ बताए देता हूँ। कि अब मैं उस नालायक-कमीने की एक फूटी कौड़ी भी देने वाला नहीं हूँ।"'मुझे सब

मालूम है कि आजकल वह चार लेकर चालीस लिख रहा है।"

मैं उन्हें केवल देखता रहा। जब उन्होंने एक साथ यह कह कर चुप्पी साधी तब मैंने विनीत स्वर में कहना शुरू किया, "बाबू जी। आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं हूँ चन्द्र, बीकानेर···।"

"अरे चन्द्र बेटा, आओ-आओ, प्रह्लाद की माँ, देखो चन्द्र आया ?"

जिन्दगी ने अपनी निर्दयता से जिसकी हर वस्तु छीन ली है, ऐसी कंकालवत् एक वृद्धा मेरे समक्ष खड़ी हो गई। उसने मुझे थोड़ी देर देखा फिर ममता भरे स्वर में बोली, "आँखों की जोत भी जाती रही बेटा, बड़ी मुश्किल से चेहरा पहचान पाती हूँ, एक कपूत सारे कुटुम्ब की नैया को डुबो देता है। आ बेटा, आ तेरे लिए चाय बनाऊँ ?"

"नहीं माता जी, चाय पीने के बाद ही बिस्तरा छोड़ता हूँ। बड़ी गंदी आदत पड़ गई है। प्रह्लाद कहाँ है ?"

उसके बाप ने पगड़ी पहन ली थी। कोट को पहनते हुए वह बोले, "हमारे लिए वह मर गया और हम उसके लिए मर गए। बेटा, उसने हमें कहीं का नहीं रखा, समाज में इतना जलील करा दिया है कि हम गर्दन ऊँची उठाकर भी नहीं चल सकते। पन्द्रह-हजार का भुगतान करने के बाद मैंने अपना हाथ रोक लिया। शायद तुम्हें नहीं मालूम ? हो भी कैसे ? तुम्हारे जाने के बाद वह कुछ रईसजादों के फेर में पड़ा। उनसे मित्रता करने के लिए उसका मन लालायित हो उठा। अपनी हैसियत की परवाह किए बिना वह उनके साथ अनाप-शनाप खर्च करने लगा। धीरे-धीरे वह क्लबों में जाने लगा। ताश खेलने लगा। पहले एक आना प्वाइंट और बाद में एक रुपया। जमा हुआ धंधा उखड़ने लगा। पत्र बन्द हो गया। प्रेस बिक गया। फिर वह रात-रात भर घर नहीं आता। बहू के गहने चुराने लगा और एक दिन एक जुए के अड्डे में कई जुआ-रियों के साथ वह भी पकड़ा गया। अखबारों ने खबरें छापीं, क्योंकि उसमें कई रईसजादे भी थे, नतीजा यह निकला की खानदान की शान मिट्टी में मिल गई।" उन्होंने गहरी सांस लेकर कहा, "मैंने सोचा कि

इस आघात से वह सुधर जाएगा पर नहीं। वही बेढंगी रफ्तार। क्या करता ? खूब कहा-सुनी होती थी। धीरे-धीरे कर्ज बढ़ता गया उस पर एक दिन कुँवर साहब ने अफीम खा ली।"

'अफीम !' मेरे मुख से चीख सी निकली।

"हाँ बेटा, अफीम खा ली। लाचार होकर मैंने १५ हजार का देना चुकाया और उसने सबके सामने यह कसम खाई कि अब वह कभी भी जुआ नहीं खेलेगा, पर कहावत है नीम को कितना ही घी से सींचो परंतु वह मीठा नहीं होगा, ठीक इसी तरह जिसका स्वभाव जैसा हो जाता है, वह मरने के बाद ही छूटता है। सो उसने मेरी कसम खाई। पर तीसरे ही दिन वह रात को नहीं आया। वही रफ्तार। लाचार मैंने उसे घर से अलग कर दिया। शायद परिवार का बोझ उसकी कमर को झुका दे, पर सब व्यर्थ ? कुछ फल नहीं निकला। हाँ, मिन्नी की शादी रुक गई। जुआरी को कौन साला बनायेगा ? तुम्हारी माँ यह सदमा नहीं सह सकी। सारा स्वास्थ्य हार गई। छोटे बच्चों में एक अजीब-सी कुंठा आ गई है। हीनता के कारण वे घर में बैठे रहते हैं। बेटा, इस शैतान ने मेरा सर्वनाश कर दिया।' और उनकी आँखें भर आईं।

मैंने उन्हें सान्त्वना देने के लिए कहा, "भाग्य बड़ा प्रबल होता है बाबू जी।"

"और दोष भी किसे दिया जा सकता है ?"

तभी मिन्नी आ गई। बहुत बड़ी हो गई थी मिन्नी। यौवन की लज्जा उसकी आँखों में चमक रही थी। मैंने रूखी मुसकान के साथ कहा, "मिन्नी, तू तो बहुत बड़ी हो गई।"

मिन्नी ने गर्दन नीची कर ली।

"तू बड़ी खुदगर्ज बहन है। जाने के बाद कभी राखी ही नहीं भेजी ?"

उसने सहमते-सहमते कहा, "आप पता भी देकर नहीं गये। आपको चिट्ठी देनी चाहिए थी।"

तभी बाबू जी ने अवरोध उत्पन्न किया, "मिश्री, जा भैया के लिए चाय बना ही ला।" मिश्री चली गई। उसका करुणाप्लावित मुख मेरे सम्मुख बड़ी देर तक नाचता रहा। पुतलियों की नीचे तैरती दर्द की छायाएँ, उदास-उदास रेखाएँ। मेरा अन्तस पसीज गया। चाय पीकर मैं जैसे ही बाड़ी के मुख्य द्वार पर पहुँचा वैसे ही मिश्री ने मुझे पुकारा, "भैया।"

मैं रुक जरूर गया था पर मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

"भैया! आप ही प्रह्लाद को समझाइए न, उसके कारण सारे परिवार पर संकट आ गया है। सभी दुखी है।" उसका स्वर जरा रोदन-पूरित हो गया, "और मुझ पर तो दुख का पहाड़ टूट पड़ा है। जेल के कैदी की तरह जीवन हो गया है मेरा, हर कदम पर माँ खड़ी रहती है गोया मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं, मेरी अपनी कोई नैतिकता नहीं, जैसे मैं अपना भला-बुरा जानती ही नहीं हूँ। हर घड़ी माँ गुस्से से जली हुई सी बोलती है। दादी भैया के कारण चकी और उसका कुफल मुझे भोगना पड़ रहा है। जानते हैं आप, मेरी पढ़ाई बीच में ही छुड़वा दी, वर्ना मैं अब मैट्रिक पास कर लेती‥ ‥मुझे किसी से हँसकर बातचीत नहीं करने दी जाती है, यहाँ तक कि अपने छोटों से भी। सहेलियाँ कहती हैं कि तू आजन्म कुँवारी रहेगी। जुआरी की बहन को अपने सेठिया-समाज में कोई भी बहू नहीं बनाएगा और बाबू जी मुझे अभागी निरभागी ही कहते रहते है। मैं आपको हाथ जोड़ती हूँ कि आप भैया को समझाइए, उनसे कहिए कि आप जिस मिश्री के लिए प्राण देने को तत्पर रहते थे, उसकी जरा दुर्दशा तो देखिए।" मिश्री की आँखें सजल हो गईं। मेरा मन भी भारी हो गया। तभी 'मिश्री-मिश्री' की कर्कश बुलाहट हुई और मैं उससे विदा लेकर चला आया। आते-आते प्रह्लाद का पता भी पूछ आया।

चौथे रोज मैं प्रह्लाद के घर पहुँचा। सुबह थी, ताजा सुबह! एक छोटी सी बाड़ी में वह एक कमरा लेकर रहता था। कमरे की पिछली

दीवार सीलन से गीली थी। इन छः वर्षों में उसके दो बेटियां और हो गई थीं। उसकी बहू अंगीठी में आलू उबाल रही थी। उसकी देह पहले जैसी ही मोटी थी। मुझे देखते ही वह क्षण भर हक्की-बक्की रही, बाद में विस्मय भरी मुसकान बिखेर कर बोली, "कब आए आप? हमारी बहन को लाए या नहीं?"

उसने मेरे लिए एक बोरी बिछा दी। मैं उस पर बैठता हुआ बोला, "नहीं, अकेला ही आया हूँ। दिल्ली में अचानक विचार हो गया था।"

"क्या बहाना बनाते हैं? जानबूझ कर नहीं लाते, आप सभी मर्द एक से होते हैं?"

पता नहीं क्यों मुझे मजाक सूझा? मैंने हंसते हुए धीरे से कहा, "मर्द एक से न होते तो आप दुबली न पड़ जातीं?"

भाभी प्रेमा एकदम उदास हो गई। मेरे मजाक का उसके हृदय पर जोर का आघात लगा। वह घुटती हुई सी बोली, "आप मुझे कितनी सूखी मारते रहिए, मैं तो मोटी ही होऊँगी। अब आप ही देखिए न? कितना कष्टदायक जीवन है? इनके पीछे मेरे पीहर वाले भी मुझ से सीधे मुँह बात नहीं करते। उन्होंने भी उन्हें समझाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी, किन्तु इनके सिर पर शनि देवता जो आ विराजे हैं, भली बात को सुनते ही नहीं! बस, उल्टी ही उल्टी। कसमें और प्रतिज्ञाएँ उनके लिए कुछ भी नहीं। कई बार पहले माँ ने भी छिपे रूप से मेरी मदद की पर अब वह भी बन्द हो गई। मेरे पिता जी का कहना है कि तू ऐसे आवारा-लफंगे को छोड़कर अपने घर क्यों नहीं आती? मैं समझ लूँगा कि तू विधवा है।... पर मैं इन्हें छोड़ कर नहीं जा सकती। बुरे दिन में ही पत्नी की परीक्षा होती है। कुछ भी हो चन्द्र भैया आखिर वह है तो मेरे पति? ग्रह-चक्र के सामने आज तक किसी की नहीं चली है? वह कोई सुनी थोड़े ही है? कभी खिलखिलाते बच्चों को देखकर रो पड़ते हैं पर जुआ छोड़ नहीं सकते।"

प्रह्लाद आ गया था। उसके साथ मिश्री। मुझे देखते ही वह बिगड़

पड़ा, "तुम्हें मैंने मना किया था फिर भी तुमने अपने मन की पूरी की। तुम्हारी यह प्रवृत्ति मुझ से सहन नहीं हो सकती।"

मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "अपनापन मुझे यहाँ तक खींच लाया। पिछले सौहार्द और बन्धुत्व ने विवश कर दिया। प्रह्लाद ! जुआ खेलना छोड़ दो।" मेरा स्वर अन्त में भारी हो गया।

"नहीं छूटता चन्द्र, नहीं छूटता। तुम समझते हो कि मैंने चेष्टा नहीं की। बहुत की पर हर रात हिस्टिरिया के रोगी की तरह मेरा मन जुए के अड्डे पर जाने के लिए छटपटाने लगता है। बीबी का अनुरोध, बच्चों की दयनीयता और घर की तबाही सभी कुछ उस नशे के पीछे गौण हो जाते हैं और मैं···।" वह एक दम रुक गया, "तुम यह नहीं जानते कि मैं मिसी को कितना चाहता हूँ। इस बहन को मैंने फूलों की डाली की तरह अपने इन हाथों से पाला-पोसा है। इसके एक-एक आँसू को सुखाने के लिए मैंने सौ-सौ मुसकान बिखेरी है। किन्तु क्या करूँ ? इसी बहन के जीवन को मैंने जहर बना दिया है। मैं इसके दर्द को खूब जानता हूँ पर मेरी परवशता सबसे अधिक शक्तिमान और क्रूर है।"

वह पश्चात्ताप की आग में जल रहा था। कमरे में सन्नाटा छा गया। मिसी की आँखें भरी-भरी सी हो गईं विफल-विषाद चारों ओर व्याप्त सा हो गया।

मैंने आत्मविश्वास के साथ कहा, "मनुष्य तत्पर हो तो प्रत्येक अव-गुण छोड़ा जा सकता है। संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है।"

वह तरस भरी हँसी हँस पड़ा, "सूक्तियाँ बोलने में बड़ी सहज होती हैं पर प्रयोग में उतनी ही दुष्कर हैं। खैर, जब तुम सभी लोग ऐसा ही समझते हो तो समझते रहो। मैं जुआ मरने पर ही छोड़ूँगा। अब तुम जा सकते हो।"

मैंने जाते हुए गुस्से से कहा, "तुम्हारे साथ कोई मजबूरी नहीं है, तुम बदमाशी पर उतर आये हो और जो व्यक्ति बदमाशी पर उतर आता है, उसे कोई भी सही रास्ते पर नहीं ला सकता।" मैं हवा की

तरह चला आया।

लगभग सात माह बाद मैं एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए कलकत्ता पुनः आया। सम्मेलन से निवृत्त होने के बाद एक दिन हम लोग चौरंगी पर घूम रहे थे कि एकाएक मुझे प्रह्लाद की सूरत से कुछ मिलता-जुलता कोई व्यक्ति दिखाई पड़ा। उसे देखते ही मुझे प्रह्लाद याद हो आया। दूसरे दिन मैं उसी छोटी सी बाड़ी में पहुँचा। वहाँ से मालूम हुआ कि प्रह्लाद यहाँ से चला गया है। मैंने सोचा कि शायद किराया न चुकाने की वजह से मकान-मालिक ने उसका सामान नीलाम करा दिया होगा। मैं उसके बाप की वाड़ी गया।

द्वार पर सूखा-सूखा सा एक इन्सान मुझे दीखा। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और उसने मैली-सी धोती पहन रखी थी। उसकी आँखें भीतर धँसी हुई थीं और वह बूढ़ा-सा लग रहा था। मैं उसके सामने खड़ा हो गया। वह सूखी मुसकान के साथ बड़े ही धीमे स्वर में बोला, "आओ चन्द्र, कब आए भैया? बाबू जी ऊपर हैं। मैं थोड़ी देर में आता हूँ।"

मैं उसकी गम्भीरता के समक्ष कुछ भी प्रश्न नहीं कर पाया। चुप-चाप ऊपर चला गया। एक अजीब-सी उदासी वहाँ के वातावरण को घेरे हुए थी, घुटन और तड़प! बाबू जी हिसाब-किताब में तल्लीन थे। मैंने उनका ध्यान भंग किया। वह मुसकराते हुए बोले "आओ बेटा आओ, कब आए?"

"कुछ दिन हो गए।"

"और आए हो अब?"

"फ़ुर्सत नहीं मिली।"

"बैठो, चाय तो पीओगे न? अरे मैं भी क्या हूँ, इसके लिए तुम्हें पूछ रहा हूँ। प्रह्लाद की माँ! चाय तो बना ला।" और वह थोड़ी देर तक स्तब्ध से बैठे रहे। मुझे निहारते रहे। मेरे देखते-देखते उनकी आँखें भर आईं। मैंने शंकित होकर पूछा, "क्या बात है बाबू जी?"

बाबू जी ने थूक निकलते हुए बड़ी कठिनाई से कहा, "पिछली बार

तुम्हें मिन्नी ने चाय पिलाई थी और आज मिन्नी · ।"

"क्यों, मिन्नी को क्या हुआ ?" मैंने व्यग्रता से पूछा।

"मिन्नी हमें सदा के लिए छोड़कर चली गई।"

मैं पत्थर हो गया। बाबू जी मेरे सामने आठ-आठ आँसू बहा रहे थे। माँ भी आकर रोने लगी थी। कितने क्षण बीते, मैं नहीं जानता, परन्तु जैसे ही मैं होश में आया मैंने अनुभव किया कि मैं रो रहा हूँ। मैंने रुँधे स्वर में कहा, "क्या हुआ मिन्नी को ?"

"मैं बताऊँ ?" रंगमंच के अभिनेता की तरह प्रह्लाद ने कमरे में प्रवेश किया। मेरी प्रश्नभरी आँखें उसकी ओर उठ गईं। वह खड़ा-खड़ा जलते स्वर में बोला, "मैंने उसे मार दिया। मैंने उसकी हत्या कर दी। मेरे जुआरी ने उस कली के सारे सपनों को मिटा कर रख दिया।··· चन्द्र। अब मैं जुआरी नहीं हूँ। मैंने जुआ खेलना बन्द कर दिया। अब मैं नौकरी करता हूँ पर वे दो आँखें ? नहीं, नहीं, मैं उन्हें नहीं भूल सकता। मिन्नी की आँखें नहीं भूली जा सकती।" और वह अबोध बालक की तरह रोता हुआ भीतर चला गया।

चाय के प्याले ठंडे हो गए।

मैं उन्मन-सा उठा, भाभी के पास गया। भाभी बेचारी झुर-झुरकर पिंजर हो गई थी। चेहरा उभरी हुई हड्डियों की वजह से कुरूप लगने लगा था। मैंने कृत्रिम हँसी के साथ अनिच्छा से परिहास किया, "अब क्यों दुबली हो रही हो ?"

भाभी कुछ देर मेरी ओर देखती रही और बाद में खिड़की की राह अनन्त पर दृष्टि फैला कर बोली, "पता नहीं क्यों, आपके भैया के इस रूप का मुझे उस रूप से अधिक भय लगता है ? यह प्रशान्त शान्ति, यह अखण्ड मौन, यह एकरसता और यह उदासीनता, सच मैं उनके इस अमूल परिवर्तन से दूर बड़ी चिन्तित रहती हूँ। हर घड़ी आशंका बनी रहती है कि कोई अशुभ होने वाला है, कोई आँधी आने वाली है। चन्द्र भैया, अब यह सहन नहीं है।"

'वह सहज भी हो जाएंगे। बहन का आघात है न ?"

"हाँ, मिन्नी ने आत्महत्या की......।"

"आत्महत्या ?"

"हाँ।" उसने टूटते स्वर में कहा, "उस रात जोर का तूफान आया था, भयानक तूफान! तूफान के साथ बादलों की भयावह गर्जना, मूसलाधार वर्षा! तब मिन्नी बाई इस कमरे में अकेली सोती थी, पता नहीं कब वह बाहर गई और कब उसने छत से कूद कर प्राण दिए, यह उस भयानक रात को कोई भी नहीं जान सका। बाबू जी को सुबह ही पता चला। हंगामा मच गया। हमें उस बाड़ी में बुलावा आया। सुनते ही वह बेहोश हो गए। बड़ी मुश्किल से यहाँ लाए। हाय! कितना बीभत्स दृश्य था? मैं उन्हें नहीं देख सकी। और वह पागलों की तरह हाहाकार करने लगे। इन्होंने अपना सिर फोड़ लिया, मूर्छित हो गए। मिन्नी बाई ने मरने के पूर्व एक पत्र लिखा था, अपने भैया के नाम।" भाभी उठी और वह पत्र निकाल कर ले आई। खोलकर पढ़ने लगी—भैया! मैं सदा क लिए जा रही हूँ। बहन एक सोन चिरैया होती है, एक न एक दिन उसे दूसरे की बगिया में जाना ही पड़ता है। हँसती, गाती, उड़ती, महकती सभी का अटूट अनुराग लिए हुए वह दूसरे की गृहलक्ष्मी बन जाती है। बाप का लाड़, माँ की ममता और भैया का दुलार सभी कुछ उसके ससुराल की विदाई के समय उसके अन्तस में केन्द्रीभूत हो जाते हैं। और मेरी इस अनन्त यात्रा की बेला में सभी का प्यार मेरे साथ है किन्तु तुम्हारा नहीं। क्योंकि तुम शैतान के हुक्म से चलते हो, तुम्हारे भीतर का इनसान मर चुका है। तुम से प्रार्थना है कि मेरी अर्थी को अपने दिल में उस शैतान को बसाए हुए मत छूना। शैतान का स्पर्श मेरे परलोक को भी इहलोक की तरह बिगाड़ देगा। अगर छूना तो अपने भीतर नए इनसान को जन्म देकर जो मुझ जैसी अभागी बहन का जीवन न ले बल्कि उसे युगों-युगों तक चुनरियाँ ओढ़ाता रहे। जिसके स्पर्श से अलौकिक आनन्द मिले..............भैया! मरने

के पहले मेरे मन में किसी का दुख है तो तुम्हारा ! तुम मुझे बचपन में मिन्नी कहते थे। जानते हो, मिन्नी (बिल्ली) की आँखें कितनी तेज होती है, अँधेरे में भी चमकती है, उस मिन्नी की बड़ी-बड़ी आँखों को चूमकर उसे आकाश में उछाल दिया करते थे और मैं धम से तुम्हारे हाथों में गिर जाती थी। खिलखिलाकर हँस पड़ती थी और तुम्हारा चेहरा मेरी खिलखिलाहट को देखकर फूल-सा खिल जाता था। उस मिन्नी के जीवन को तुमने कितना नीरस और निर्दय बना दिया। उसका हर क्षण मुझे उत्पीड़ित करता रहा। वेदना पहुँचाता रहा।······ ······क्या करूँ भैया, शायद तुम्हे मेरी पीर का अहसास नहीं है किन्तु मुझे तुम्हारी दुर्दशा और निर्लज्जता ने विकल और उद्विग्न बना दिया है। मेरे लिये यह असह्य है, सीमाहीन है। कुछ दिन पूर्व मेरी एक सहेली ने स्नेहसिक्त स्वर में कहा, "अरी मिन्नी क्या तू आजन्म कुँआरी रहेगी ?"

मैंने कहा, "क्यों ?"

"जुआरी की बहन किसी चोर की बहू ही बन सकती है। भला आदमी उसे अपने घर में पाँव नहीं रखने देगा।" और मैं इधर देख रही हूँ कि उसका कथन सत्य हो रहा है। मुझे कोई भी अपनाने को तैयार नहीं। तुम्हारा साया हर जगह खड़ा रहता है।···· और तुम्हारी लाडली बहन किसी चोर की बहू बने, यह तुम सह सकते हो पर मैं नहीं। इसलिए मैं सदा-सदा के लिए जा रही हूँ। बाहर भीषण तूफान है। बादलों की गर्जना से लग रहा है कि आज ये पृथ्वी पर बड़ा भारी कहर ढाने वाले हैं। सुनती आई हूँ—जब देवता जन्मते हैं तब ऐसी प्रलयकारी घड़ी होती है। कुछ भी हो, मेरे लिए दोनों ही लाभदायक हैं। अच्छा भैया, अन्तिम बार प्रणाम ! सुनो, तुम मेरी लाश को मत छूना। माँ को तो तुमने पहले ही मार-सा दिया है, उसके नैनों की ज्योति छीन ली है। ओह ! तुम कितने हृदयहीन हो गए हो। ········ अन्तिम बार तुम्हें ही प्रणाम ! क्यों हृदय तुम्हें बार-बार प्रणाम करता

है ? आत्महत्या मैं अपनी इच्छा से कर रही हूँ। गीत की पंक्ति इस समय कान में गूंज रही है: "भैया मेरे राखी के बन्धन को निभाना, याद का दीपक जलाना ···जलाना, भैया मोरे ··"

मेरा कलेजा फट गया। आँसू झर-झर बह उठे। भाभी खत पढ़ते-पढ़ते कई बार सिसक पड़ी। मैंने उससे कहा, "भाभी! मिन्नी कितनी प्यार की प्यास लिए मरी है।"

भाभी ने खत समेट कर रख दिया। तभी प्रह्लाद आया। मुझे रोते हुए देखकर वह सब कुछ समझ गया। रोदन भरी मुस्कान के साथ बोला, "अरे पगले, उठ, उसके लिए मत रो, वह मेरी आत्मा में जिन्दा है।··· ·· माँ ने तुम्हारे लिए दुबारा चाय बना ली है। चल······ चल न।" और उसकी आँखें आँसुओं से भर आईं। मुझे लगा कि यह सचमुच नया इन्सान जन्म ले रहा है।

गोमली



दोपहर। जलती धूप। स्तब्ध हवा। घुटन और उमस। शून्यता की और उदासी।

ऐसे अप्रिय मौसम मे गोमली कुए की बायी छतरी से निकली। उसके सिर पर लोहे की कढ़ाई थी। उसमे उपले भरे थे।

कुआ। बन्द और जर्जर। उसके दाये-बायें दो छतरियाँ। बनावट सामन्ती। ऊपर के गुम्बद खण्डित। लगते थे—अब गिरे, तब गिरे।

सूनी पगडंडी भयानक गर्मी के कारण और सूनी हो गयी थी। कुए के आस-पास कोई बस्ती नहीं थी। थोड़ी दूर पर थी निम्न जातियों की बस्ती। माली, स्वामी, भाट और सुनार भी।

गोमली सुनारिन थी।

अपने मुहल्ले की सबसे बदनाम और चरित्रहीन युवती। उसने अपने पति के रहते हुए एक साईस से प्रेम कर लिया था। प्रेम ही क्यों, उसने उसके संग नया घर बसा लिया था। चूंकि साईस गुण्डा था इसलिए मुहल्ले के शरीफ लोग मुँह पर ताले लगाये हुए थे। अगर वह कमजोर होता, तो मुहल्ले वाले उनका इस तरह रहना दूभर कर देते। उन्हे इतना तंग करते कि मुहल्ला छोड़कर जाना ही पड़ता। गोमली को कुछ

कहना तो दूर रहा, बल्कि मुहल्ले वालों के हृदय में यह आशंका थी कि कहीं गोमली को कुछ कह दिया तो साईस धाधूं खून खराबी पर उतर आयेगा। इसलिए वे सभी बेमन से गोमली की इज्जत करते थे, जितनी एक सच्चरित्रा की। वैसे गोमली मुहल्ले के दुख-दर्द में काम आती थी। हरएक के संकट में भागकर जाती थी।

धाधूं विधुर था। उसकी बीवी जीवन-यात्रा की दो मंजिलें तय कर एकदम टूट गयी थी। विवाह के दो वर्ष बाद उसे हल्का-सा बुखार आया। रात को धाधूं ने उसे दूध पिलाकर सुलाया और सुबह उसकी नींद, अमर नींद बन गयी। धाधूं को उसके लिए पश्चात्ताप था, पर उसकी आंखों में आंसू नहीं आये थे क्योंकि उसे अपनी जोरू पसन्द नहीं थी। उसके मन-प्राण में गंगले सुनार की जवान बहू गोमली का रूप बस गया था। वह मुग्ध हुआ छत पर बैठा रहता था। उसे महसूस होता था कि गोमली छत पर अपने बाल सुखा रही है। उसके बाल इतने लम्बे हैं कि वे कमर के नीचे तक चले आये हैं। उसके बालों को देखकर उसे उन कहानियों पर विश्वास होने लगा कि एक राजकुमारी हर रात खिड़की से अपने बाल लटका देती थी और उसका प्रेमी उसके महल में केश पकड़कर चला जाता था। कभी-कभी उसे भ्रम-सा होता था कि हवा में उसके बालों के इत्र की खुशबू बसकर उसे मदहोश कर रही है और वह प्रतिमा-सा निश्चल बैठा रहता था।

गंगला दुबला-पतला और हरामखाऊ था। वह बिना मेहनत के जीवन गुजारना चाहता था। इतना ही नहीं, बुरी संगत के कारण अफीम भी खाता था। अफीम की पिनक में वह निर्जीव-सा पड़ा रहता था और गोमली की सेज के फूल बिना छुए ही मुरझा जाते थे। वह गंगले को कुछ नहीं कहती थी। घूंघट में लिपटी वह कोल्हू के बैल की तरह काम करती रहती थी। सुबह वह उठकर कुएँ से पानी के मटके लाती थी। बाजार से सौदा लाती थी। चक्की पीसती थी। गोबर थापती थी और बाद में वह ऊन कातने चली जाती थी। घूंघट वह कभी

नहीं उठाती थी। स्त्रियाँ उसे लजीली कहती थीं और ऊन के कारखाने का मालिक सेठ मनोहर सदा उस पर गिद्ध-दृष्टि लगाये बैठा रहता था। किन्तु गोमली ने उसे कभी भी अवसर नहीं दिया। गोमली अपने काम से काम रखती थी। उसे मजदूरी से वास्ता था। हाँ, वह धाधू से जरूर परेशान थी। धाधू उसे छत से इशारे करता था। रास्ते में घेरकर प्यार की प्रार्थना करता था। तब वह भयभीत हिरनी-सी खड़ी रहती थी। वह उसकी किसी बात का उत्तर नहीं देती थी। धाधू उसके मौन से परेशान हो जाता था।

अपनी पत्नी की मृत्यु के दो माह बाद धाधू की दशा एक उन्माद-ग्रस्त प्राणी-सी हो गयी। उसे लगने लगा कि वह पागल हो जायेगा। उसका सिर बिना गोमली के फट जायेगा। उसे उठते-बैठते गोमली का मुखड़ा लहरों के बीच झिलमिलाते चाँद की तरह लगने लगा। आखिर एक दिन गोमली का हाथ पकड़ ही लिया।

ऐसी ही एक दोपहर थी। जलता आकाश और जलती पृथ्वी के कारण पशु-पक्षी भी नहीं दिख रहे थे। उस समय गोमली लाल ओढ़नी में अपना सौन्दर्य झलकाती बाजार जा रही थी। धाधू ने उसको पकड़ अपने घर में खींच लिया। वह कुछ बोले, इससे पहले ही उसने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। वैसे गोमली उसकी गुण्डागर्दी से आतंकित थी ही।

गोमली ने पहली बार अपना मौन तोड़ा। वह आकुल-सी एक कोने में खड़ी हो गयी। उसके गोरे ललाट पर पसीने की बूंदें चमक उठीं। उसकी झील-सी गहरी प्यारी आँखों में अपरिसीम दुख झलक आया। वह कम्पित-स्वर में बोली, "परायी स्त्री के साथ जबरजश्ती (बलात्कार) करना धर्म नहीं है।"

धाधू ने अपने हाथों को बुरी तरह झटकाकर कहा, "मैं तुम्हें चाहता हूँ, मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता। रात-दिन तुम्हारा मुखड़ा... गोमली!" और वह आगे बढ़ा। उसकी बाहों ने गोमली के रेशमी

शरीर को लपेटना शुरू कर दिया। गोमली ने बड़ी दीनता से कहा, "भगवान ने तुम्हें ताकतवर इसलिए नहीं बनाया कि तुम दूसरों की इज्जत को धूल में मिलाओ, भले आदमियों की पगड़ियाँ उछालो। यह अन्याय है धाधूं ! दिल को प्यार से जीतो, तकरार से नहीं। अगर तुमने मेरे संग जबरजश्ती की तो मैं अपने शरीर को आग लगाकर मर-मिट जाऊँगी।" गोमली की आँखों में आँसू उभर आये। वह जोर से सिसक पड़ी। सिसककर उसने धाधू की ओर देखा। धाधू को लगा संसार की सारी व्यथा गोमली की आँखों में है। धीरे-धीरे वह शिथिल होने लगा। उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसकी वासना की चिनगारियाँ बुझने लगीं। वह हवा की तरह गोमली के सामने से हट गया।

गोमली को गंगले से शिकायत थी कि वह धाधू को डाँटे कि वह उसकी बीवी को आते-जाते न छेड़ा करे। गंगला गया भी धाधूं के पास। पर बीवी की शिकायत न करके वह उससे दो रुपए उधार माँग लाया। उन दो रुपयों की उसने खूब शराब पी। उस शराब के नशे में उसने धाधूं की बड़ी प्रशंसा की और बोला, "वह एक शरीफ आदमी है। आज उसने मुझे पिलाया।" गंगले के चेहरे पर निर्लज्जता नाच उठी।

गोमली का मन अपने पति के प्रति घृणा से भर आया। उसे लगा कि यह कैसा मर्द है ! इसमें जरा भी गैरत नहीं। कायर और पौरुषहीन !

धीरे-धीरे गंगले में परिवर्तन आने लगा। आजकल उसके पास पर्याप्त पैसा दिखता था। जब कभी भी गोमली पूछती थी, वह कहता था, "आजकल मैं सेठ मनोहर के यहाँ काम करता हूँ।" गोमली ने मजदूरी पर जाना बन्द कर दिया। जब उसका पति कमाता है, तो वह औरों के यहाँ मजदूरी करने क्यों जाय ?

इधर उसने धाधूं के जीवन में बड़ा परिवर्तन देखा। आजकल वह बहुत सवेरे तागा लेकर मजदूरी करने चला जाता था। किसी से झगड़ा-फसाद नहीं करता था। उसकी ओर देखता तक नहीं था। उस दिन की

घटना के बाद गोमली के हृदय में एक कोमल भावना जन्म गयी थी—धाधूं के सद्व्यवहार और उपेक्षा से और सजीव व सुखर हो गयी। कभी-कभी गोमली के मन में यह प्रश्न जाग जाता था, "आजकल धाधूं छत पर क्यों नहीं आता, उसकी ओर क्यों नहीं देखता?" वह तब घंटों छत पर बैठी रहती थी। किन्तु धाधू छत पर नहीं आता था। आता भी था तो उसकी ओर नहीं देखता था। इससे गोमली के मन में अपमानजनित पीड़ा की लहर उठ जाती थी। वह आवेश में उन्मत्त-सी हो जाती थी। उसकी इच्छा होती थी कि वह धाधू का हाथ पकड़कर डांटे कि वह उसकी ओर क्यों नहीं देखता?

कल तो उसने हद कर दी। वह स्नान करके छत पर चढ़ी। धाधू छत पर झाड़ू लगा रहा था। गोमली सदा की तरह नहीं लजायी। वह कुछ क्षण तक झाड़ू लगाने मे तन्मय धाधू को देखती रही। देखते-देखते उसका मन करुणा से भर आगा। वह भावनाभिभूत हो उठी। उसने जोर से खंखारा। धाधूं ने उसकी ओर एक उड़ती नजर फेंकी और वह अपने काम में तन्मय हो गया।

गोमली जल गयी। गुस्से में भर उठी। साथ ही एक विचित्र कारुणिक भावना से उसका अन्तर भर आया। वह साड़ी सुखाकर नीचे आ गयी।

दोपहर।

आज धाधूं जल्दी आ गया था। वह तांगा खोलकर घोड़े की मालिश करने लगा।

गली में सन्नाटा था। शून्यता थी। वह मालिश करके घोड़े को कुएँ के पास ले गया, पानी पिलाने। तभी उसने देखा—गोमली सिर पर मटका रखे आ रही है। उसने अपनी दृष्टि सूने आकाश की ओर की। गोमली आयी। उसने हौज में मटका भरा। धाधूं के मन में अन्तर्द्वन्द्व मच गया। उसकी इच्छा हुई, वह अगस्त्य मुनि की तरह एक दृष्टिघूंट में गोमली के सौन्दर्य-सागर को पी ले, पर उसने अपने मन के 'तूफान'

को रोक लिया। वह सब कुछ हारे हुए जुआरी की तरह चला।

दो कदम भी नहीं गया था कि गोमली ने पुकारा, "मिजाज बहुत बढ़ गया है! आँख उठाकर देखते ही नहीं!"

धाधू के पाँव रुक गये।

"मटकी तो ऊँची कर दो।"

धाधू उसके पास आया। मटकी को उठाया क्षणभर में उसकी दृष्टि उसके चाँद-से मुख पर रुकी। गोमली के होठों पर शैतानी भरी मुस्कान थिरक उठी।

"तुम मुझ से नाराज हो?"

"नहीं।"

"फिर आजकल इतने बदल क्यों गये हो?"

"तुम्हें पाने के लिए।" कहकर धाधू जल्दी से नीचे उतर गया।

गोमली ठगी-सी खड़ी रही। फिर वह चली बहुत धीरे, मानो उसके मन ने धाधू के प्यार को स्वीकार कर लिया हो।

अंधेरा अजगर की तरह कच्चे-छोटे मकानों को अपने लील गया था। धाधू बारह बजे वाला सिनेमा खत्म करके आया था। वह घोड़े के शरीर पर हाथ फेर रहा था। हाथ फेरकर घर के भीतर गया। ढिबरी जलायी।

तभी उसे कदमों की आहट सुनायी पड़ी।

"कौन?"

"मैं।"

"गोमली!"

"हाँ।"

"इतनी रात गये?"

"मन नहीं माना। धाधू, तुमने मुझे प्रेम से जीत लिया। मैं हार गयी। मैं हार गयी। वह रुआंसी होकर उसके चरणों में बैठ गयी।, उसके चेहरे की वासनाजनित उत्तेजना और उद्विग्नता ढिबरी केहल के

प्रकाश में स्पष्ट लक्षित हो रही थी।

"गोमली ! तुम शादीशुदा हो।"

"प्यार के बीच शादी दीवार नहीं बन सकती।"

"तो मुझे बहुत चाहती हो ?"

"न चाहती तो इस तरह तुम्हारे पाँव पड़ती ?"

"किन्तु !"

"मुझे अधिक मत सताओ। मैं सचमुच हार गयी।"

"फिर तुम मेरे पास सदा के लिए चली आओ। छोड़ दो अपने पति को।" धाधूं ने दीवार की ओर मुँह करके कहा।

गोमली की वासना एकदम गायब हो गयी। वह झट से खड़ी होकर बोली, "क्यों ?"

"मैं चाहता हूँ, तुम सदा मेरे साथ रहो।"

"नहीं-नहीं-नहीं।" वह एकदम चीख-सी पड़ी।

"पड़ोसी भी रहते हैं।" उसने गोमली को सावधान किया।

"ओह ! तुम गुण्डे के गुण्डे ही हो। तुम्हारा दिल पत्थर का टुकड़ा है।" और गोमली चली आयी।

धाधूं की वही गति थी। वही मौन और वही अन्तर्मुखता। अपने काम से काम। पर गोमली ने अपने हृदय की आवाज के विरुद्ध बगावत कर दी। उसने भी वही रवैया अख्तियार कर लिया। वह भी धाधू से नहीं बोलेगी। वह गुण्डा है। उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं आया। वह उसे भरे बाजार में बदनाम करना चाहता है। नहीं, वह ऐसा नहीं करेगी।

किन्तु एक घटना और घटी।

धाधूं किसी बरात में बाहर चला गया था। गंगला उस रात अफीम की पिनक में होते हुए भी जाग रहा था। लगभग बारह बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया। गंगला उठा। उसने किवाड़ खोले।

"आ गये मनोहर बाबू ?"

"हाँ।"

"मैं लोटा लेकर जंगल जाने का बहाना बना रहा हूँ। आप···।"

"कहीं·······।"

"आप चिन्ता न करें, वह कुछ भी नहीं कहेगी। मैंने सारी बात कर रखी है।"

"मैं तुम्हारा सारा कर्ज माफ कर दूँगा।"

"और पचास रुपए की बात ?"

"वह भी दूँगा।"

गंगला चला गया।

चाँदनी के धुँधले प्रकाश में सोयी हुई गोमली का चेहरा साफ दिखता था। मनोहर उसके पास बैठ गया। गोमली ने आँखें खोल दीं। देखा तो झटके के साथ खड़ी हो गयी।

"तुम कौन हो ?"

"अरे मुझे नहीं पहचाना। क्या तुम्हें गंगले ने नहीं बताया कि आज मैं यहाँ आने वाला हूँ ?"

वह गंगले की ओर झपटी।

"वह बाहर चला गया है।" सेठ मनोहर ने हँसकर कहा, "कल से मैं तुम्हें शहर के बाहर वाली कोठी में रखूँगा। यहाँ मुझे धापूं का बड़ा डर लगता है।" कहकर उसने गोमली का हाथ पकड़ लिया।

गोमली के तन-बदन में आग लग गयी। उसने कड़ककर कहा, "भला चाहते हैं तो इसी समय वापस जाइये।"

"और मेरे रुपये ?"

"मैं कहती हूँ, चले जाइये। वर्ना मैं शोर कर दूँगी। आदमियों को इकट्ठा करके आपको जलील करा दूँगी।"

"खूब ! खसम बुलाता है और बीवी धमकी देती है। गोमली, मैं सेठ हूँ। धापूं के साथ रहने से तुम दुखों के सिवाय कुछ नहीं पाओगी। मेरे संग चलो, आनन्द ही आनन्द मिलेगा और तुम्हारा पति भी यहीं

चाहता है।"

"आप चले जाइये।" उसने भड़ककर कहा।

सेठ बदनामी के भय से चला गया। उसके जाते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। गंगला आकर चुपचाप सो गया। उस रात गोमली को नींद नहीं आयी। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गयी। सुबह गंगले ने बेहयायी से कहा, "चाय?"

गोमली ने उसकी ओर जलती दृष्टि से देखा और चाय बनाने लगी।

धाधू लौट आया। उसने कई बार गोमली से मिलने की चेष्टा की पर वह नहीं मिल सका। आखिर बात क्या है? उसका हृदय धड़कने लगा। वह गोमली को चांदी की तश्तरी देना चाहता था जो उसे बरात में मिली थी। वह तश्तरी बहुत सुन्दर थी।

आखिर रात हो गयी। रात भी टल गयी। दूसरी सुबह आयी। वह अपने मन को नहीं रोक सका। जैसे ही गंगला जंगल गया, वैसे ही वह गोमली के पास जा पहुँचा। वह 'गंगला-गंगला' पुकारता हुआ घर में घुस आया। सामने ही गोमली बैठी थी—मुरझाये फूल-सी। वह उसे देखकर हतप्रभ हो गया।

"क्या तुम बीमार हो?" उसने प्रश्नभरी दृष्टि से देखकर पूछा।

वह चुप रही। उसने अपनी दृष्टि दीवार पर जमा दी और पाँव के अँगूठे से जमीन कुरेदने लगी।

"चुप क्यों हो? बोलो न, तुम्हें मेरी कसम।"

गोमली फूट-फूटकर रो पड़ी। उसकी सिसकियाँ हृदयविदारक थीं। धाधू ने उसे अपने सीने से लगाकर दुलारा।

"क्या बात है गोमली?"

गोमली ने रोते-रोते सारी बातें सुनायी। धाधू का मन क्रोध से भर गया। तश्तरी को जमीन पर फेंकता हुआ वह बोला, "मैं उसकी जान निकाल दूँगा। उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

गोमली काँप उठी।

"मैं उसकी आँखें निकाल दूँगा। तू चिन्ता न कर, मैं तेरा बदला लूँगा।" कहकर धाधू बाहर चला गया।

गोमली विमूढ़-सी खड़ी रही-दो पल। जब धाधू उसकी आँखों से ओझल हो गया तब उसे होश आया। वह बाहर की ओर भागी, किन्तु धाधू चला गया था। वह क्या करे? वह किस तरह धाधू को रोके? वह भंवर में पड़ी नाव की तरह झूलती रही। फिर वह सेठ के ऊन के कारखाने की ओर भागी।

वह जैसे ही वहाँ पहुँची, उसने देखा—वहाँ भीड़ जमा थी। धाधू को कई आदमी पकड़े हुए थे। सेठ के सिर से खून बह रहा था। धाधू के कान के पास भी खून की धारा बह रही थी और धाधू कह रहा था, "आगे से उस रास्ते से गुजरा तो सेठ, जिंदा नहीं छोड़ूँगा। भीम की तरह तेरा खून पी जाऊँगा। गोमली को बेसहारा मत समझना।" और वह शेर की तरह दहाड़ता हुआ लौट आया। गोमली भी वहाँ से तुरन्त अदृश्य हो गयी थी।

जब उसने घर में कदम रखा तब गोमली को उसने वहाँ बैठे पाया। वह उसे प्यार भरी नजर से देखता रहा, देखता रहा। खून की बूँदें अब भी चू-चूकर उसकी बनियान पर पड़ रही थीं। गोमली का हृदय प्यार से भर आया। आँखें आँसुओं से भर आयीं। वह धाधू से लिपटकर बोली, "मैं सदा के लिए तुम्हारे पास आ गयी हूँ, मैंने पिछले सारे नाते-रिश्ते तोड़ दिए हैं। अब मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। मैं तुम्हारी ही पत्नी बनने के काबिल हूँ। इस रूप की रक्षा तुम्हीं कर सकते हो।"

और वे उस दिन से एक हो गये। गंगला दूसरे मुहल्ले में चला गया। कुआँ बन्द हो गया। पर किसी ने गोमली से यह नहीं पूछा कि आखिर उसने अपने पति को क्यों छोड़ा? हाँ, वह सब दबी जबान से कहते हैं कि वह निहायत गिरी हुई छिनाल स्त्री है जिसने अपने भोले-भाले गरीब पति को छोड़ दिया है।

मिस प्रभु और उनका फोड़ा

वह फिर अकेली घूमने आयी थी।

सांझ के डूबते सूरज के समय जब क्षितिज का रंग रक्ताभ हो जाता था और नीले दर्पण रूपी आकाश में दो-चार पखेरू धब्बों की तरह उड़ते थे तब मिस प्रभु अपनी सहेलियों के साथ घूमने आया करती थीं। वह कभी भी उदास नहीं लगती थी और उसके कहकहों से सारी पर्वतीय घाटी गूंज जाती थी। वह बहुत बातूनी थी और उसके चहरे पर सदा खुशियों के बादल तैरा करते थे। हास-परिहास उसकी साधारण बातचीत में सधा रहता था।

रंग गोरा, चेहरा कुछ अधिक चौड़ा, इसलिए कम आकर्षक। स्वास्थ्य अच्छा। वस्त्र अत्यन्त आधुनिक ढंग के। उम्र यही तीस-पैंतीस। एकांत से घबराने वाली। यही कारण था कि उसने अपने मकान में अपनी दो सहेलियों को और रख छोड़ा था। ये दोनों सहेलियाँ कुंवारी थीं और छुट्टियों में अपने घर चली जाती थीं। तब मिस प्रभु उस सन्नाटे से एक-दो दिन तो खूब घबरायी रहती थी; मन ऊबा-ऊबा सा रहता था और वह कोशिश करती थी कि उसकी ड्यूटी रात की रहे। रात को भी वह अपने घर में अकेली नहीं सोती थी। पलंग के पास अपनी नौकरानी को सुलाती थी और उससे नींद की अंतिम झपकी तक हास-परिहास-युक्त वार्तालाप

करती थी।

रात को कभी-कभी उसकी नींद उचट जाती थी। अंधेरे में मन आकुल हो जाता था। घुटन उसके साँस को रोकने लगती थी और अंधेरे की परतें धीरे-धीरे उसके मन पर जमने लगती थी। तब वह घबरा जाती थी और कमरे में तुरन्त उजाला कर लेती थी। अपनी नौकरानी रामी को जगाती—"रामी! ओ रामी!"

रामी हड़बड़ा कर उठ जाती। अपनी आँखों को मलती हुई पूछती, "क्या बात है मालकिन?"

"बात यह है कि तू सोते-सोते हँस क्यों रही थी?"

"हँस रही थी?" वह विस्मय से पूछती।

"हाँ हँस रही थी। इस तरह हँस रही थी कि मैं घबरा गयी। मुझे लगा कि तुझे कोई भूतनी लग गयी हो? बता, सच्ची बात क्या है?"

"कुछ नहीं।"

"मुझ से छिपाती है?"

"नहीं तो!"

"क्या तूने अपने पति को सपने में देखा था?"

"नहीं तो!"

"जरूर देखा," वह अपने शब्दों पर जोर देकर कहती। "तेरी आँखों में झाँकती लज्जा बता रही है।" बस, इसी तरह निरुद्देश्य और बिना सिर-पैर की बातें किया करती थी।

रामी कुछ उत्तर न देती। धीरे-धीरे प्रभु की बड़ी-बड़ी आँखों में नींद घुलने लगती। बात का सिलसिला वहीं खत्म हो जाता। प्रभु नींद में खुर्राटे भरने लगती और रामी उसे कोसने लगती। उसकी नींद उचट जाती। आँखों से दूर, बहुत दूर भाग जाती। जल्दी वापस नहीं आती। वह बेचारी करवटें बदलते-बदलते परेशान हो जाती।

इस तरह मिस प्रभु का जीवन गुन-गुनाती हुई लहरों की तरह चल

रहा था। वह बदनाम-खुशनाम दोनों थी। उसकी सभी सहेलियाँ कहती थीं, "यह न हो तो जीवन में उदासी ही उदासी छा जाय।"

इतना सब कुछ होते हुए भी मिस प्रभु की पुरुषों की सोसाइटी नहीं के बराबर थी। उसे वह जहाँ तक हो सकता किनारा ही करती थी हालाँकि वह खुद डाक्टर थी, उसका काम अनेक डाक्टरों से पड़ता था, पर वह उनसे उतना ही सम्पर्क रखती थी जितना आवश्यक होता था।

प्रायः वह रात की ड्यूटी लेती थी—अपनी ही नहीं, अपनी साथी डाक्टरनियों की भी। जब कभी वे इससे अनुरोध करती यह सहर्ष स्वीकार कर लेती। विवाहिता से कहती, "भारत की भूमि अत्यन्त उर्वरा है। सभी पावन-श्रेष्ठ नदियाँ यहीं पर बहती हैं। पंडित नेहरू के अनुरोध का ध्यान रखना!" और कुमारियों से कहती, "तुम पर मैं दया भी करना नही चाहती और तुम लोगों की उदासी भी नहीं सह सकती। मेरी एक बात को मानना—हर कदम देखभाल कर उठाना। खाली समय में औरत का दिमाग सही ढंग से बहुत कम सोचता है। वह एकांत से घबरा जाती है और घबराहट में अत्यन्त गलत निर्णय कर लेती है।"

ये बातें वह प्रायः ही दोहराया करती थी। दोहराते समय वह गम्भीर नहीं लगती थी। उसके होठों पर वही निश्छल व्यंगभरी मुस्कान थिरकती थी। उसकी सहेलियाँ भी उसका कुछ बुरा नहीं मानती थीं। वे सब उसको खूब समझ गयी थीं।

मिस प्रभु अपने मरीजों में बहुत लोकप्रिय थी। वह उनके लिए ममता की साक्षात प्रतिमा थी। रात के सन्नाटे में जब हड्डियों को ठिठुराने वाली सर्दी पड़ती, बर्तनों में रखा पानी बर्फ की तरह जम जाता, धमनियों के रक्त का प्रवाह रुका-रुका सा लगता, बाहर जंगल सी नीरवता छायी रहती तब मिस प्रभु अपनी ड्यूटी रूम से निकलती। खुली खिड़कियों को बन्द करती, रोगिणियों को लिहाफ ओढ़ाती और

उनकी छाती पर हाथों को हटाती ताकि वे भयानक और बुरे सपने न देखे। वह तड़पती हुई रोगिणी को सान्त्वना देती। उसे ढाढ़स और धैर्य बँधाती तब उसकी आकृति पर वही अलौकिक वात्सल्य दीप्त हो जाता। तब उसे कोई नहीं कह सकता था कि यह वही बातूनी प्रभु है जो बक-बक और अनर्गल प्रलाप किया करती है। उस समय उसके चेहरे पर प्रौढ़ महिला जैसी गम्भीरता होती थी।

सुबह वह अपने घर चली आती। रामी से एक दो उपहास की बातें करती, बाद में दैनिक कार्य से निवृत्त होकर सो जाती है। ग्यारह-बारह बजे उठती और फिर उसी उल्लासमय गतिमान जीवन में व्यस्त हो जाती है।

किन्तु उस दिन मिस प्रभु अत्यन्त व्यग्र दिखायी दी। चिंता की रेखाएँ उसके मुख पर दौड़ रही थी और वह आकुल-व्याकुल सी थी। उसने पुकारा, "रामी !"

"क्या है ?"

"ये दोनों मास्टरनियाँ कहाँ गयीं ?"

"दस दिन के लिए बाहर चली गयी हैं।"

"कहाँ ?"

"कैम्प में।"

"क्यों ?"

"मैं क्या जानूं ?" उसने भोलेपन से कहा।

मिस प्रभु और भी बेचैन हो उठी। वह टूटकर पलंग पर पड़ गयी और बड़ी देर तक अपने विचारों में तन्मय रही। बाद में धीरे-धीरे उसने अपनी साड़ी को ऊँचा किया। उसकी नंगी पिंडलियाँ चमक उठी और साड़ी जाँघ के अर्ध-भाग तक आकर रुक गयी !

उसने आतंकित दृष्टि से देखा—फोड़ा ! रोम-टूटा, फोड़ा ! वह अबोध बालक की तरह उसे देखती रही। अनार के प्रारम्भिक दाने की तरह उसका फोड़ा उसकी गोरी जाँघ पर चमक रहा था। उसने उस पर

हाथ फेरा। उसे मीठी-मीठी गुदगुदी हुई। उसे दर्द मीठा-मीठा लगा। वह बड़ी देर तक उस पर हाथ फेरती रही। सुखद अनुभूति ने उसे विह्वल कर दिया। चिड़िया की तरह चहकने वाली प्रभु की आँखें भर आयीं।

रामी ने बिना पूर्व सूचना के कमरे में प्रवेश किया। वह अपनी मालकिन को रोते हुए देखकर भौचक्की-सी रह गयी। आकुल स्वर में बोली, "क्या बात है मालकिन ?"

मिस प्रभु ने अपनी अश्रुभरी दृष्टि से उसे देखा। वह कुछ बोली नहीं। विषाद की छाया ने उसके मुख को बहुत ही करुण बना दिया था जिससे रामी का मन भी उदास हो गया।

क्षण भर तक निस्तब्धता छायी रही।

"क्या बात है !" रामी ने फिर मौन तोड़ा।

"फोड़ा···"

"कहाँ ?"

मिस प्रभु ने जाँघ की ओर संकेत कर दिया। वह अपने आँचल से अश्रु पोंछने लगी।

रामी खिलखिला कर हँस पड़ी। उसकी हँसी से सारा कमरा गूँज उठा। मिस प्रभु विमूढ़ हो गयी। वह इतने ज़ोर से क्यों हँसी यह नहीं समझ सकी। जब प्रभु के समक्ष किसी कारण का उद्घाटन नहीं हुआ, तब वह अबोध बालक की तरह सहज स्वर में बोली, "तू हँसी क्यों ?"

"मैं इसलिए हँसी कि आप डाक्टरनी होकर भी एक ज़रा-सा फोड़ा होने से रोती हैं ?"

मिस प्रभु गम्भीर हो गयी। उसकी दृष्टि में प्रश्न चमका जिसे उसने अपनी मुस्कान में विलीन करना चाहा पर रामी समझ गयी। जिस तेज़ी से मिस प्रभु के चेहरे पर विचारों के परिवर्तन हुए उन्होंने रामी को आतंकित कर दिया। वह निश्चल सी खड़ी, मिस प्रभु के चेहरे का अवलोकन करती रही।

"रामी !" मिस प्रभु ने उसे सान्त्वना देने के लिये कहा—"मैं इस

फोड़े से घबरा जाती हूँ। एक बार पहले भी मेरी दूसरी जाँघ में ऐसा ही फोड़ा हुआ था, जिससे मैं घबरा गई थी। पूरे एक माह के बाद भरा था। देखो यह रहा उसका दाग।" कहकर उसने अपनी दूसरी जाँघ भी नंगी कर दी। उसमें एक गहरा तिकोना दाग था।

"बड़ा अजीब दाग है!" रामी ने पुतलियों को नचाकर कहा।

"तभी तो मैं घबरा गयी थी!"

"फिर आप जल्दी से इलाज क्यों नहीं करतीं?"

"करूँगी।"

किन्तु मिस प्रभु ने चार रोज तक कुछ भी दवा नहीं की। उसने अस्पताल से छुट्टी ले ली पर इस फोड़े के रहस्य को गुप्त ही रखा और रामी को भी मना कर दिया कि वह इस फोड़े का जिक्र किसी से भी न करे। इन चार दिनों में उसने उस फोड़े का जो दुर्वह दुःख वहन किया उसे या तो रामी जानती थी या स्वयं वह।

चौथी रात फोड़ा अपने पूरे जोर पर था। पीब भर गयी थी और सारी जाँघ ताँबे की तरह लाल हो गयी थी। मिस प्रभु उसे सहलाती रहती थी और जब पीड़ा अधिक होती तो वह नशे की गोलियाँ ले लेती थी। रामी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। "दर्द को पालना भी कोई शौक होता है! फिर मालकिन तो दर्द के नाम से डरती भी हैं।" किन्तु उसमें इतना भी साहस नहीं था कि वह जरा दबाव देकर पूछे कि आखिर इस तरह तड़पने में क्या मजा मिलता है?

आधी रात हो गयी।

मिस प्रभु के पास लैम्प की हरी रोशनी सीमित वृत्त में फैली हुई थी। उसका हल्का प्रकाश मिस प्रभु के मुख पर पड़ रहा था और वह अपनी कोमल हथेली से फोड़े को सहला रही थी। रामी रुष्ट होकर सो गयी थी। आज उसने अपनी मालकिनसे अत्यन्त आग्रह किया था कि वह क्यों नहीं बताती कि आखिर इस जाँघ के फोड़े को पालने में उसका कौन-सा स्वार्थ है। मिस प्रभु ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया था। वह धीरे-

धीरे सीत्कारती रही थी। उसके अधरों पर दर्द चमक-सा रहा था और दृष्टि में अर्थभरी कई चिनगारियाँ उठ-उठकर बुझी जा रही थीं।

गहरी चुप्पी से उकता कर रामी ने अन्त में कहा था, "मालकिन आप नहीं बताती हैं तो मैं कहूँगी कि आपका माथा नहीं है।" और वह सो गयी थी। सोते ही उसे गहरी नींद आ गयी, जैसे वह घोड़े बेचकर सोयी हो।

मिस प्रभु के सम्मुख कल्पना का चित्र हलके हृदय की तरह नाच उठा—

"कल यह फोड़ा फूट कर ही रहेगा। खून और पीप की धारायें मेरी सारी जाँघ को लहूलुहान कर देंगी इसके सौन्दर्य और केले की छाल-सी सुकोमलता को विकृत कर देंगी। उसे खुरदरा बना देंगी। कई दिनों के लिए लेकिन······।"

"लेकिन-वेकिन मैं नहीं जानता, मैं कल तुम्हारा आपेरेशन करूँगा ही।" प्रभु के प्रेमी मदन ने कहा था।

"आखिर क्यों?"

"क्यों-क्या? कहीं विषैला हो गया तो?"

"मुझे विषैला नहीं हो सकता।"

"इसलिए नहीं हो सकता कि तुम डाक्टर हो। क्या डाक्टर को बीमारियाँ नहीं होतीं?"

"तुम समझते क्यों नहीं मदन, फोड़ा है, अपने आप ठीक हो जायेगा।"

"डार्लिंग, रोग उपचार से ही ठीक होता है। मैं कल इसका आपरेशन करूँगा ही, चाहे तुम लाख चिल्लाना। ज्यादा करोगी तो बेहोश कर दूँगा। आखिर मैं तुम से सीनियर हूँ।"

"अच्छा बाबा, अच्छा," मिस प्रभु ने उसे देवता की तरह लम्बे हाथ जोड़े। मदन ने उन बँधे हुए हाथों को अपनी कोमल हथेलियों के बीच ले लिया। प्यार से उन्हें पकड़े रहा। मिस प्रभु अपने फोड़े का

तीखा दर्द क्षण भर के लिए भूल गयी।

"क्या सोच रहे हो?" प्रभु ने पूछा।

"सोच रहा हूं, इन हाथों को जीवन पर्यन्त न छोड़ूं?"

लजा गयी थी प्रभु। नेत्र झुक गये और गालों पर लालिमा झलक उठी। वह कुछ बोली नहीं, देखती रही तृष्णा भरी दृष्टि से। पता नहीं कब मदन ने उसके होठों को रसीला कर दिया था। वह विमुग्धता में जान भी न सकी।

मदन और प्रभु के बीच आकर्षण अस्पताल में आते ही उत्पन्न हो गया था। धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ा और प्यार ने अँगड़ाई ली। मदन उत्तर प्रदेश का निवासी था, और प्रभु राजस्थान की। प्रभु के माँ-बाप नहीं थे। नाना ने उसे डाक्टर बना दिया था। शादी करने के बारे में वह स्वतन्त्र थी। उस पर किसी तरह का जातीय प्रतिबन्ध नहीं था। मदन सुन्दर था—डाक्टर था। दोनों की जोड़ी खूब फबेगी। किन्तु दोनों ने एक दूसरे के समक्ष दिल खोलकर नहीं रखा। ऐसी परिस्थिति भी नहीं आई।

और, एक दिन वह अवसर आ ही गया।

मिस प्रभु की जाँघ में फोड़ा हुआ। मालूम पड़ते ही मदन आया और उपचार करने लगा। मिस प्रभु ने साफ कह दिया कि वह न तो आपरेशन करायेगी और न ही दवा लेगी।

"क्यों?" मदन ने पूछा।

"इसलिए कि मैं इसे ठीक नहीं समझती।"

मदन उसके हठ के समय कुछ बोला नहीं। उसे जब-जब समय मिलता तब-तब भागा उसके पास आता था और उसके फोड़े को देखता था। प्रभु को यह अच्छा लगता था। मदन की अंगुलियों का स्पर्श उसके मन में सरगम का संगीत भर देता था। पीड़ा मीठी-मीठी और भी प्यारी हो जाती थी। धीरे-धीरे फोड़ा बिगड़ गया। अब मिस प्रभु की एक भी न चली। मदन ने उसका जबरदस्ती आपरेशन कर दिया। प्रभु की करा

भी कष्ट न हुआ। वह इन्जेक्शन भी लेने लगी।

पट्टी बाँधते हुए मदन ने पूछा, "इतने दिन तक तुमने आपरेशन क्यों न करने दिया ? व्यर्थ ही कष्ट भोगा। अब यह घाव भरेगा भी बहुत देर से।"

"मुझे तड़पने मे आनन्द आता है," उसने भावुकता से कहा।

"अच्छा !"

मिस प्रभु ने गर्दन हिला दी जैसे कह रही हो कि 'हाँ'। वस्तुतः मिस प्रभु ने इस फोड़े का बहुत ही शुक्रिया अदा किया, क्योंकि इससे उसके और मदन के बीच की झिझक-झेंप मिट गयी। वे अत्यन्त समीप आ गये। उसके अरमानों के फूल खिल उठे। उल्लास के स्रोत फूट निकले।

प्रभु ने एक दिन उसे अपनी बाँहों का सहारा देते हुए कहा था, "कब शादी करोगे ?"

"जल्दी ही।" मदन ने कहा।

"पिताजी को लिखा ?"

"लिख दिया।"

"क्या उत्तर आया ?"

"उन्होंने मुझे बुलाया है।"

"कब जा रहे हो ?"

"अगले सप्ताह।"

पर अगले सप्ताह ही मदन की दूसरे शहर में बदली हो गयी। मिस प्रभु को यह अच्छा नहीं लगा। उसने मदन से अनुरोध किया कि वह अपनी बदली का आर्डर कैन्सिल करा दे। चाहे उसके लिए कुछ रुपये खर्च हो जायें तो भी कोई परवाह नहीं। मदन ने उसे आश्वासन दिया कि वह प्रयास करेगा।

पर मदन की बदली होकर ही रही।

मिस प्रभु ने उसे आँसू भरी विदाई दी और कहा कि "तुम्हें अस्प-

से-जल्द विवाह करने का प्रयास करना चाहिए। मैं अब एकान्त से घबरा चुकी हूँ। मेरा मन अधिक अलगाव अब नहीं सह सकता।"

मदन ने ड्यूटी ज्वाइन की। वहाँ से वह छुट्टी लेकर घर गया। एक माह तक नहीं लौटा। क्या करे मिस प्रभु ? उसके पास उसके घर का पता भी नहीं था ! हर पत्र में लिखता था कि मैं दो-चार दिन में आ रहा हूँ। इससे प्रभु ने पता खोजने की अधिक चेष्टा भी नहीं की थी।

प्रभु की दशा विरहिणी जैसी थी। आखिर मदन लौट आया। उससे मिला। दो-तीन दिन आमोद-प्रमोद मे बिताकर वह वापस नौकरी पर चला गया।

"शीघ्र ही हम अटूट बन्धन में बँधेगे।" मदन ने जाते समय उससे कहा था।

दो पत्रों के बाद मदन का कोई पत्र नहीं आया। इसने कई पत्र डाले। आखिर वह घबरा उठी। कहीं मेरा मदन बीमार तो नहीं हो गया ? वह दुष्कल्पनाओं से अधीर होती गयी। उसे हर घड़ी अहित का आभास होता था। अनागत अमंगल की आशंकाओं से वह डूबी सी रहती।

एक दिन वह चुपचाप रवाना हो गयी अपने मदन के पास।

दूसरे दिन मदन के अस्पताल में पहुँची। मदन नहीं था उस दिन। रात ड्यूटी करके गया था अभी-अभी। उसने घर का पता लिया। चल पड़ी तांगे में। उसके दिल में उत्तेजित सपने तैर रहे थे। वह उनकी मादकता में विभोर हो गयी। आँखों के आगे आँसुओं के बादल छा गये।

"कहाँ चलूँ बीबी जी ?" ताँगेवाले ने उनका ध्यान भंग किया।

"बड़े चौराहे की दूसरी गली में।"

ताँगा दूसरी गली में घुस पड़ा।

उसने एक आदमी से पूछा, "भाई, नम्बर ५२५ कहाँ पर है ?"

आदमी ने अपनी गोल-गोल आँखें मिचमिचाईं जैसे वह सोच रहा हो, फिर कर्कश स्वर में बोला—"उस बड़े वृक्ष के आगे।" ताँगा

चल दिया।

"मैं जानती हूँ, वह अभी सोया हुआ होगा। उसका बलिष्ठ शरीर रेशमी बिस्तरे पर इस तरह लेटा हुआ होगा जैसे कोई अँगड़ाई सजीव होकर निद्रा में निमग्न हो। मुझे देखकर वह चौंक उठेगा और अपनी विशाल बाहों में भर लेगा। मैं उसे नहीं रोकूँगी। आखिर वह मेरा होने वाला पति ही तो है!" वह सोचती जा रही थी।

ताँगा रुक गया।

"ठहरना भैया," कहकर वह उस द्वार की ओर बढ़ी। उसने कुंडी खटखटाई। द्वार खुला। एक सुन्दर-सुघड़-सलोनी युवती उसके समक्ष खड़ी थी। उस युवती ने प्रणाम करके पूछा—"आप किसको चाहती है?"

"डाक्टर मदन को।"

"आइये, वे चाय पी रहे है," कह कर युवती ने बड़े आदर-भाव से उसे चलने का संकेत किया।

प्रभु के मस्तिष्क में उस युवती ने अनेक प्रश्न उत्पन्न कर दिये। पर हालात ऐसे थे कि वह कुछ पूछ न सकी।

"डाक्टर साहब!" युवती ने पुकारा।

मदन ने गर्दन उठायी। विस्मित-सा हो गया। हठात् मुँह से निकला "तुम?"

"हाँ मैं", उसने कठोर स्वर में कहा जैसे वह मौजूदा तूफान के रंग को पहचान गई हो।

"प्रमिला, यह मेरे साथ काम करती थीं, नाम है मिस प्रभु···और ये है मेरी पत्नी प्रमिला।"

"नमस्ते," प्रमिला ने कहा।

"कैसे आना हुआ तुम्हारा?"

"काम से।"

"इनका सामान ताँगे में है, आप कर लाते क्यों नहीं?" प्रमिला

ने कहा।

"नही बहन जी, मै अपनी सहेली के यहाँ ठहरूँगी। वह यही पास मे रहती है। मुझे जाने की इजाजत दीजिये।"

"पर चाय ?"

"थेंक्यू।" वह हवा की तरह घर से बाहर चली आयी। वह उसी समय वापस चली आयी। उसका हृदय चीत्कार कर उठा। उसे लगा कि वह जंगल मे जाकर जोर-जोर से चीखे, अपना सिर फोड़े, बालों को खींचे। कही वह पागल तो नही हो जाएगी ?

मिस प्रभु कई दिन तक गूँगी बनी रही। बाद मे सहज हो गई। उसने प्रण कर लिया कि वह कभी भी विवाह नही करेगी। तब से वह धीरे-धीरे बातूनी बन गयी। उस एकान्त और नीरवता को अपने पास फटकने नही दिया, जो उसे दुर्दिनों का स्मरण करा देती थी।

किन्तु यह दूसरी आँख का फोडा ! लक्ष्य समाप्त हो गया।

रात बहुत ढल गई थी। अतीत चलचित्र की तरह कुछ देर के लिए साकार होकर बाह्य अँधेरे मे लोप हो गया था। हरी बत्ती का प्रकाश सागर की सतह जैसा अब भी फैला हुआ था। मिस प्रभु अपनी आँख के फोड़े को सहला रही थी। दर्द आज फिर मीठा हो उठा था। आज वह फिर इस फोड़े को क्यों पनपने दे रही है ? वह इस मर्म से अज्ञात है। खोजने का प्रयास करती है पर मृग-मरीचिका की तरह उसे शून्य ही मिलता है। वह क्यों यह पीड़ा भोग रही है ? मदन की स्मृति फिर उसे कुरेदने लगी। वह भावना में बह गई। उसे लगा कि वह फोड़े को इसलिए जीवित रख रही है कि उसके अचेतन मन में एक दुराशा है कि अभी मदन आयेगा और कहेगा, "मैं इसका आपरेशन करूँगा।"

प्रभु घबरा गयी। प्रीति के वे मधुर क्षण उसकी आँखों के समक्ष नाचने लगे। उसने हारे हुए सेनानी की तरह अपने मन-कपाट बन्दकर लिए। उसने कमरे में अन्धेरा कर दिया।

पीड़ा बढ़ रही थी। स्मृतियाँ पीछा नहीं छोड़ रही थीं।

अंधेरे में लगा कि मदन उसके पास खड़ा है। कह रहा है—"क्यों पीड़ा भोग रही हो? मैं आज आपरेशन करूँगा। इसका मवाद निकालूँगा।"

"हूँ!" उसका अन्तर्मन भड़क उठा।

"मैं ठीक कहता हूँ।"

"तुम मुझे स्पर्श कर लोगे तो मैं अपनी जान दे दूँगी। छली, नीच! आखिर तुमने वह ढोंग क्यों रचा? मेरे जीवन में कभी न खत्म होने वाली वीरानियाँ और तनहाइयाँ क्यों भर दीं? मैं कहती हूँ, मरने दो मुझे! मेरे फोड़े को हाथ मत लगाओ मदन, मदन! मैं तुम्हारा स्पर्श भी अब सहन नहीं कर सकती। जाओ···!" और उसने अपनी जाँघ को पेट में समेटने की चेष्टा की। दर्द तीव्रतम होकर तड़पाने लगा। फिर यकायक कम होने लगा। भावनायें टूटकर बिखर गईं। वस्तु-जगत प्रकट हो गया। उसने लपककर बेड-स्वीच दबाया। कमरे में फिर हरा प्रकाश फैल गया। उसने देखा—फोड़ा फूट गया है, मवाद बह रहा है उसके शरीर से। वह क्षण भर देखती रही। फिर जोर से चीखी—"रामी!···रामी, जल्दी से उठ। रामी, ओ रामी!"

रामी हड़बड़ा कर उठी। उजाला और भी तेज किया।

"क्या है मालकिन?"

"मेरा फोड़ा फूट गया, मेरा फोड़ा फूट गया।" उसके चेहरे पर ऐसी अपूर्व खुशी थी जैसे उसे नया जीवन मिल गया हो—जैसे इस फोड़े के मवाद के साथ उसके मन की वे कुंठायें भी निकल रही हों जिन्होंने उसे आवश्यकता से अधिक अन्तर्मुख बना दिया था।

"फूट गया?" रामी ने चौंककर पूछा—उसके चेहरे पर भी अपूर्व खुशी थी।

"हाँ, देख न!"

रामी दौड़कर गई, डिटोल और गर्म पानी ले आयी। वह घाव को हल्के-हल्के हाथ से साफ करते हुए पूछ रही थी, "आपने इतने दिनों तक

दर्द को क्यों सहा ?"

मिस प्रभु मुस्कराती हुई बोली --"तू नहीं जानती; मैं अकेली नहीं रह सकती। इसीलिए इस दर्द को साथी बना लिया। तू तो जानती ही है, तेरी ये दोनों मास्टरनियाँ दस दिन के बाद आयेंगी !"

"एक बात कहूँ, आप बुरा तो नहीं मानेंगी ?"

"नहीं।" उसने पुलक कर कहा।

"जीवन में सदा साथ देने वाला तो औरत का अपना मर्द ही होता है। आप विवाह क्यों नहीं कर लेतीं ? मेरी बात मानिये और चट मँगनी पट ब्याह कर लीजिये।"

मिस प्रभु की आँखें मानो बोल पड़ीं, "मैं अब जरूर करूँगी," पर वह प्रकट में बोली—"धुत् पगली, मवाद बह-बह कर नीचे गिर रहा है और तुझे विवाह की बातें सूझ रही हैं ? जल्दी कर !"

रामी धीरे-धीरे फोड़े के आस-पास की जगह दबाने लगी। मिस प्रभु के भाव-लोक में नया ही चित्र बन गया। मानो जाँघ को दबाने वाली वे अँगुलियाँ उसके अपने पति की हैं और वह एक बार फिर अपने दर्द को भूल गयी।

— —

मैड हाउस

●

दोपहर में जिस तरह समुद्र का किनारा खाली रहता है, उसी तरह सड़कें खाली थीं। इक्की-दुक्की लहर की तरह बसें और दूसरे परिवहन आ जा रहे थे।'''इतनी भरी और व्यस्त नगरी का यह खालीपन मुझे रुचिकर नहीं लगा। पर यह खालीपन ही इस नगरी की और यहाँ के लोगों की वास्तविकता है। ऊपर से भरा-भरा और भीतर से खाली, जमीन के एक बहुत बड़े निरर्थक होल की तरह खाली।

मैं बेशकीमती पोशाक पहने हुए घूम रहा हूँ। कहीं भी मन का ठहराव नहीं। रेस्त्राँ, सिनेमा घरों और अनेक दूकानों के शो-रूमों में जाता हूँ, थोड़ी देर बैठता हूँ। मन अच्छी चीजों, सुन्दर औरतों और तरल-पेयों के जायके में क्षण भर के लिए खोता है। फिर उचट-उब जाता है और मैं भटकने लगता हूँ। थककर जामुन के पेड़ के नीचे खड़ा होता हूँ। अधपके, पके और पाँवों से कुचले जामुन पड़े हैं। पता नहीं, क्यों मैं उनको गिनने लगता हूँ—एक-दो-तीन-चार-पाँच-छह''' गोरे पाँव दिखायी पड़ते हैं। ध्यान इस तरह उस ओर खींचता है जैसे वे गोरे पाँव नहीं, चुम्बक हैं। दृष्टि ऊपर उठती है। विनोबा भावे का पोस्टर आन्दोलन सहसा याद हो आता है। अँग्रेजी कम्पनियों की 'कमर्शियल आर्ट' की बनायी हुई सुन्दरियों का स्मरण हो आता है। अजन्ता की 'भित्ति-

नारी भी···कि सहसा मेरा एक मित्र बरबस ध्यान भंग करता है—
"अरे तुम, भाई कब आये ?"

"कल···।"

"सूचना भी नहीं दी ।"

"सूचना देकर मैं तुम्हें परेशान करना नहीं चाहता था । तुम तो जानते ही हो, कि मैं कार्यक्रम के अनुसार घर से रवाना कभी नहीं हो सकता ।"

"आओ ।"

"पर कहाँ ।"

"बस आ जाओ, कहाँ-वहाँ मत पूछो ।"

मेरा मित्र मुझे तीन घंटों तक विभिन्न दफ्तरों में अपने निजी काम से घुमाता रहा । चढ़ते-उतरते और वेटिंग रूमों में उसकी प्रतीक्षा करते-करते मैं बिलकुल बोर हो गया । इतना बोर की अन्त में मैंने उसे झल्ला कर कहा, "तुम लोग अजीब हो और अजीब है तुम लोगों की मेहमान-नवाजी ।"

"अरे तुम यार बुरा मान गये । बस दिल्ली की लाइफ ही ऐसी है । एकदम मैकेनिकल, एकदम बिजी । फिर काम न किया जाय तो जीना मुश्किल हो जाता है ।···आओ, तुम्हें ठंडा पानी पिलाऊँ ।" मैंने अनिच्छा से पानी पिया ।

पानी का गिलास खत्म करते ही उसने अपने आपको कुछ आश्वस्त समझा और कहा, "साँझ हो गयी है यार ! चलो, तुम्हें यहाँ का मैड हाउस दिखला लाऊँ ।"

"दिल्ली का मैड हाउस ?" मेरी आँखों में प्रश्न नाच उठा ।

"हाँ, हिन्दुस्तान में अपने ढंग का अलग प्रयोग ।" जिस तरह कैदियों के जीवन को उच्चतर बनाने के लिए सरकार ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया है और सुधार जेलों का निर्माण किया है, उसी तरह संस्कृत और बुद्धिजीवियों के लिए यहाँ के एक पूंजीपति ने एक मैड

हाउस बना दिया है, जहाँ वे अपनी अन्तरात्मा के सत्य और विकृतियों को खुले आम प्रकट कर सकते हैं। आओ'''इस नये ढंग के पागलखाने और नये तरह के पागलों के बीच चलें जिन्हें घंटे दो घंटे के लिए दौरे पड़ते हैं।

हम दोनों चले। अब सड़कें ज्वार आये समुद्र की भाँति विभिन्न आकृतियों से भर गयी थीं। सतरंगे आँचल उड़ रहे थे और बसें मगर-मच्छ की तरह भीड़ को चीरती हुई लग रही थीं।

जब हम दोनों मैड हाउस के पास पहुँचे तब बाहर कुछ लोग इस तरह खड़े थे जैसे उन्हें किसी ने लूट लिया है। उनकी उदास-उदास बुझी-बुझी आकृतियाँ मुर्दा सी लग रही थीं।'''हम भी उनके पास खड़े हो गये। मैंने अपने दोस्त से कहा, "भीतर क्यों नहीं चलते ?"

उसने मैड हाउस के दरवाजे की ओर देखा। देखकर उसने लम्बी साँस खींची और बोला, "थोड़ी देर यहीं पर ठहरो, बाद में चलेंगे।"

मैंने सोचा कि उसने दरवाजे की ओर देखकर यह क्यों कहा ? शायद इस मैड हाउस का दरवाजा किन्हीं अदृश्य किवाड़ों से बन्द होगा। मैं चुपचाप वहाँ खड़ा रहा। फिर वही ऊब और खालीपन। अचानक मेरे दोस्त ने कहा, "चलो।" और वह मेरी बिना प्रतीक्षा किये ही मैड हाउस में घुस गया और पीछे छाया की तरह मैं भी।

"हीं ही ही हीऽऽऽऽ

अहा हा हा हाऽऽऽऽ"

क्षीण सिमित और खुला अट्टहास।

दो तरह के अट्टहासों के मिश्रण से अट्टहास का एक नया अन्दाज पैदा हो गया। मैं एकदम सहम गया। यकीनन यह मैड हाउस है। मैंने अपनी श्रवणेन्द्रियों के सहारे अपनी दृष्टि को दौड़ाया— दो जने आपस में अजीब तरह से मेज पर हाथ मिलाते हुए, यह अट्टहास-फव्वारा छोड़ रहे थे। एक बाल बिखरे हुए, चश्मा लगाये और बिना कॉलर का बुशशर्ट पहने हुए था और दूसरा चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी चढ़ाये

हुए था। मेरे मित्र ने बताया, "दोनों एम. ए. है। शायरी करते है। आओ तुम्हे मिलाऊँ ?"

मैंने एक बार पूरे मैड हाउस की ओर देखा। आलीशान फर्नीचर अल्ट्रा मोडर्न बनावट। फैशनेबुल पार्टी। मैं सहमा-सहमा सा आगे बढ़ा। मेरा दोस्त मुझे उनके पास ले गया। हम दोनों मेज के पास खड़े हो गये। हमें देखते ही शेरवानी वाले महाशय ने कहा, "अरे मियाँ बरकत, आज तुमने मजनूँ जैसी शक्ल क्यो बना रखी है। यार मुहब्बत के मारे हम हैं और परेशान तुम हो रहे हो ?"

मेरा दोस्त बरकत गूँगा हो गया। उसने मेरी ओर साभिप्राय दृष्टि से देखा जैसे वह मुझे कह रहा है—क्यों ? है न इनमें पागलपन ?

तभी शेरवानी फिर बोला, "बैठ न यार।" जैसे उसे कोई भूली बात याद हो आयी हो, इस तरह वह बोला, "आपकी तारीफ ?"

"ये मेरे दोस्त हैं, नरेश ?"

"यहाँ कभी देखा नहीं। क्यों जनाब, इस जगह से डरते तो नहीं हो ? यह हम इन्टैलेक्चुअल लोगों का मैड हाउस है। बैठिए न ?"

हम दोनों बैठ गये। बैठते ही बिखरे बालो वाला युवक गोपीचंद 'चमन' चौककर बोला, "यार क्या शेर बना है…

या रब इस पल की उम्र हो कयामत तक
वो आये हैं आज एक पल के लिए

असलम खीज कर बोला, "गोली मार न शेर शायरी को। हाँ मियाँ बरकत, उस लौंडिया का क्या हाल-चाल है ?" उसने आँख मारी। बरकत का हाथ जोर से दाबा। चमन चार मीनार को जलाकर अपनी शायरी की दुनिया में खो गया। मै प्रश्न भरी दृष्टि से दोनो को देखता रहा। वे दोनों अत्यन्त अश्लील बातें करते रहे।

एकाएक किसी ने बरकत को पुकारा। हम दोनों उठे। दूसरी मेज पर गये। वहाँ एक मेरा भी परिचित था, ऐसा परिचित जिसे मैं अपनी पलकों पर बिठाये रखता था और जब कभी भी वह मेरे नगर पाहुना

बनकर आया तब मैंने उसकी आगवानी मे आँखे बिछा दी थी और मैं भगवान श्रीकृष्ण की तरह नगे पॉव उनके स्वागत हेतु भागना था। लेकिन उसने मुझे ज्योंही देखा त्योंही एक अजीब अजनबी सा भाव बनाया। सचमुच उस तेज दृष्टि को देखते ही मै सहम गया और मेरी अपनी नजर ने पल भर मे सारे मैड हाउस की दीवारो को अपने मे भर लिया।

यह आत्मीय एक अनजबी सा बोला, "आप कब आये ? बैठिए ?" अत्यन्त फार्मेलिटी। मैं बैठ गया। आस-पास देखा···कई बुद्धिजीवी। लेखक, नाटककार, पत्रकार, कलाकार, चित्रकार बैठे थे।

"अरे मैने सुना बम्बई गये थे ?" मेरे आत्मीय ने मौन भग किया। "कुछ काम-वाम बना···यार ! अब तुम्हें लिखने के अलावा कुश्ती भी लड़नी चाहिए, बिना अच्छे स्वास्थ्य के स्वस्थ साहित्य नही लिखा जाता।"

मैं हैरान। कैसी मनःस्थिति है मेरे इस आत्मीय की। फिर उसने उस प्रसंग को छोड़कर मेरा अन्य दोस्तों मे परिचय कराया। एक कामेडियन शक्ल का लेखक बोल पड़ा, "मैं आपको पहले से ही जानता हूँ। आप से मिल भी चुका हूँ।"

"मुझे याद नही पड़ता।"

"कलकत्ता मे, अरे उस 'बार' में, आपके साथ एक बंगाली लड़की थी, आप उन दिनों बंगाली जीवन पर एक उपन्यास लिख रहे थे।"

"मुझे याद नही।" मैने निश्छलता से कहा।

मेरे आत्मीय को दौरा पड़ गया, "नरेश ! बगाली लड़की हाय-हाय।" उसने मेज पर जोर से थाप मारी। मैंने उसे निहायत बेहूदगी समझा, पर यहाँ की उपस्थिति पर इतनी जोर की थाप का कोई प्रभाव नहीं हुआ। सभी थे अपने-अपने मे तन्मय और व्यस्त।

बात का तारतम्य यहाँ जरूरी नही। पागलों की बात मे सिलसिला ? नही जी। तभी पत्रकार महोदय गम्भीरता से बोले, "मैंने

अपने पर्चे में एक स्टोरी छापी है—सूखे पेड़ पर हरी पत्तियाँ।···भाई, लेखक अवधेश ने आज की ह्रासोन्मुखी जीवन की बहुत ही सही तस्वीर खींची है।"

लेखक 'मनगढ़न्त' सहसा उछल कर बोले, "क्यों न सही खाका होगा, आखिर अवधेश खुद भी ह्रासोन्मुखी परम्परा का है। नो मारिल्टी नो स्टैन्डर्ड···एकदम कुत्ता, हड्डियां चूसनेवाला।"

"सुना है, सन् ६० में उसने एक छोकरी को लेखिका बनाने के चक्कर में बरबाद कर दिया था।"

"बरबाद ? जानते हो वह लड़की इतनी कुंठाग्रस्त हो गयी है कि उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया। अरचनात्मक दृष्टि। लगता है कभी न कभी वह अपनी मल्लारमस्टी के चक्कर में आत्महत्या करेगी।"

"क्या आत्महत्या की रट लगा रखी है।" मेरा आत्मीय ओर से चौंका और मेरी ओर उन्मुख होकर बोला, "बताओ यार, बम्बई में कोई एक्स्ट्रा की···।"

मैं गुस्से में भर गया। झल्लाहट से बोला, "छोकरी-छोकरी छोकरी ?···जाओ सड़क पर छोकरियों की कतार मिल जायगी।" फिर मैं कुछ रुककर बोला, "सुख-दुख की बातें करो। यह पूछो कि तुम कैसे फी लांसनिग करके जी रहे हो ?"

देवदूत आलोचक ने बीच में अवरोध उत्पन्न किया, "ए बेरा, ठंडा पानी पिलाओ।"

"लाया साहब !"

मैंने पूछा, "केवल ठंडा पानी ही पिओगे या कुछ और'''।"

सबके चेहरे क्षण भर में एक अनजानपन की तटस्थता से घिर गये। दृष्टियाँ इधर-उधर दौड़ने लगीं। लेकिन पत्रकार ने चार मिनार अकेले सुलगाकर कहा, "यह हमारा अपना हाउस है। इसके मालिक ने अपने सभी नौकरों को कह रखा है कि इन्हें कुछ मत कहना, ये सभी हमारे हाउस के

गौरव चिन्ह हैं।"...उसने जोर का कश लिया।

ठंडा पानी आ गया। पीकर कुछ ठंडे हुए।

मेरा आत्मीय मुरझाया सा बैठा रहा। तभी तालियों की गड़गड़ा-हट हुई। दूसरी मेज के पागल खुशी से उछल रहे थे। जनाब मुहम्मद अली कह रहे थे, "हिन्दी एक बकवास लैंग्वेज है। नेशनल लैंग्वेज न बन सकती है और न बनेगी।"

एक अंग्रेजी दाँ अपने तेलहीन बालों में उँगलियाँ डालकर बोला, "हम मरते दम तक भी अंग्रेजी को सपोर्ट करना नहीं छोड़ेंगे।

तभी आ गये एक व्यंग लेखक। वे अंग्रेजी दाँ के पास गये। तपाक से बोले, "आप शायद भूत बनने के बाद भी हिन्दी का विरोध नहीं छोड़ेंगे। आपकी आत्मा अखबारों के दफ्तरों, पार्लियामेंट और मिनिस्टरों के दिलोदिमाग में घूमती रहेगी। आपको इसका भी शायद दुख है कि आप ब्रिटेन में क्यों नहीं पैदा हुए? और आपका बाप एक अंग्रेज क्यों नहीं हुआ?"

सन्नाटा।

"आप-आप।" उन्होंने गुस्से में अपने होंठ चबा लिये।

"मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि हिन्दी राष्ट्र भाषा बन गयी है। अंग्रेजी के मोह ने नेहरू की प्रतिष्ठा को हिला दिया। मसानी, लोहिया और कृपलानी की जीत नेहरू सरकार के प्रति अविश्वास की प्रतिक्रिया नहीं?"

"लेकिन अंग्रेजी...।"

"पर आप अंग्रेज लोगों की मारिल्टी भी देखिए। वे आपकी तरह अपने देश, अपनी भाषा और अपने आप के प्रति गद्दारी नहीं करते। समझे।"

जोर की हँसी। वाह-वाह गांडीव जी। क्या मिजाज पाया है आपने?...और गांडीव जी गज गामिनी की तरह उसमें हुमाएं बल में शामिल हो गये और आते ही बोले, "तुमने...ने सभी कहानी पढ़ी।'क्या

प्रयोग'''बाप की'''साले प्रयोग के नाम पर कचरा भर रहे हैं साहित्य में। फिर उसने मेरी ओर देखा और हाथ बढ़ाते हुए कहा, "तुम कब आये जिगर। न सूचना और न खबर।" हम दोनों ने हाथ मिलाये। गांडीव ने झट से कहा, "इसे पूछो, उस साले चेतन के प्रति, क्या नहीं किया इसने ? पर वह साला इसे ही दगा दे गया। मैं कहता हूँ कि ऐज ए मैन, वह बहुत ही रद्दी है।"

"भाई साहित्यकार के व्यक्तिगत जीवन से हमें क्या पड़ी ?"

गांडीव चिढ़ पड़ा, "क्यों नहीं पड़ी। एक मिल मालिक किसी छोकरी के साथ बलात्कार कर लेता है तो वह गुनाहगार कहलाता है। यदि वह मजदूरों के प्रति विश्वासघात और धोखा करता है तो हम आन्दोलन खड़ा करके उसकी नैतिकता को चुनौती देते हैं और हम साहित्यकार कहलाने वाले प्राणी चाहे कितने ही अनैतिक अनुचित काम करले, क्षम्य हैं। यह कोई न्याय नहीं।"

"भई मैं तुमसे सहमत नहीं।" मेरा आत्मीय बोला।

"तुम क्यों सहमत होओगे। तुम भी तो वैसे ही हो। बेचारी मिस खन्ना को ?'''सूखे गोश्त के पीछे अपनी बीवी के संग अमानवीय व्यवहार करने वाले मानवीय संवेदना और पीड़ा और न्याय को क्यों स्वीकार करेंगे ?"

बात कटुता के दायरे में बँधती गयी।

मुझे विश्वास हो गया कि झगड़े का आरंभ होगा सो मैंने बात बदली, "रहने दो इन बातों को। सुनो गांडीव, बम्बई में जीवन बहुत अच्छा रहा। सचमुच हर लेखक को वहाँ जाकर अवश्य रहना चाहिए।"

मेरा आत्मीय मेरी बात को बिना सुने ही बोला, "गांडीव, तुम हरामजादे को कभी मैं जान से मार दूँगा। और उसने हाथ का एंगल ऐसा किया जैसे उसके हाथ में छुरा होता तो वह उसे तुरन्त भोंक देता।

मैंने तुरन्त कहा, "बम्बई में मुझे एक अत्यन्त हसीन लड़की मिली।"

एटेन्शन !

सब चुप और उनकी दृष्टि मुझ पर । लड़की !...मैंने देखा लड़की शब्द ने सबको सकते में ला दिया है और सचमुच मुझ पर भी पागलपन छा गया। मैं अपनी अन्तरात्मा के सत्य को इस तरह उगलने लगा जिस तरह कै होती है--"हाँ गांडीव, मुझे एक लड़की मिली। डांसर थी। यंग थी। मैं और मेरा एक एक्टर दोस्त उसके पास गये। मेरे दोस्त ने उस लड़की को मेरे परिचय में यह कहा कि मैं एक प्रोड्यूसर हूँ और फिल्म बनाने आया हूँ। मारवाड़ी हूँ। मारवाड़ी इस मामले में बड़ा ही प्रभावशाली शब्द रहता है। बस, लड़की हमारे चक्कर में आ गयी। एक दिन हम उसे कार में बैठा कर ले गये। समुद्र के किनारे की प्रेम नगरी में।—मुझे मंटो की कहानी 'ठंडा गोश्त' याद आ गयी। उस लड़की की वही स्थिति थी, लेकिन हम पर उस सरदार जी वाली प्रतिक्रिया नहीं हुई। मुझे महसूस हुआ कि हम उस सरदार से भी गये बीते हैं जो उस अमानवीय कृत्य से जिंदा लाश बन गया था और हम...!

"जिओ मेरे राजा।" मेरा आत्मीय बोला, "मुझे बम्बई ले चलो।...उसका सारा शरीर हिलने लगा।

और मेरे मन को धक्का सा लगा जैसे सचमुच में मैं असामान्य हो गया हूँ। इस मैड हाउस के वातावरण से प्रभावित होकर मैं भी पागल सा अलाप करने लगा हूँ। यह अलाप ही हमारे अन्तर का सत्य है। मैं सत्य और न उगल दूँ, इस भय से बाहर चला आया। मेरे साथ गांडीव आत्मीय और पत्रकार थे। बाहर अनरव कम हो गया था। हम बस की क्यू में खड़े हो गये। थोड़ी देर में गांडीव बोला, "ओह! व्यर्थ ही देर कर दी। मुझे कल सुबह अरली ऑफिस जाना है।"

मेरा आत्मीय बोला, "लानत फैंको इस मैड हाउस पर, मेरी बेबी ने अपनी किताबें मँगवाई थीं, खरीदना ही भूल गया...पाँच बजे का यहाँ बैठा हूँ।" और वह पश्चात्ताप में डूब गया।

और पत्रकार अपनी बाँयी हथेली पर समेटे हुए अखबार को बेचैनी से पीट रहा था।

और मुझे महसूस हुआ कि अब हम सभी सामान्य प्राणी हैं। और जो आधारभूत सत्य है, यह है---बेबी के लिए कापियाँ लाना, असली आफिस जाना और किसी विशेष कार्य के प्रति गैर जिम्मेदारी करने के साथ बेचैनी से अखबार को मोड़कर हथेली पर पीटना.....

तस्वीर का दूसरा पहलू

१

जिस क्षण मेरे मन में यह विचार आया था उस क्षण बाहर जोर की बारिश के साथ-साथ सनसनाती हवा चल रही थी। सभी खिड़कियों पर पानी की बूंदें गिर-गिर कर बह रही थीं, सो भी अनेक रूपों में, जिससे मेरे मन में विचित्र उलझी हुई कुछ अनुभूतियां उत्पन्न हो रही थीं। ये अनुभूतियां मुझे अपने केन्द्र-बिन्दु से अलग कर देती थीं और थोड़ी देर के लिए मैं विमूढ़ सी अपलक उन खिड़कियों की ओर देखती रह जाती थी। न जाने कितनी देर तक मैं बैठी रही, कब बारिश थमी ! कब खिड़की के शीशे साफ हुए और कब एकदम बायीं खिड़की के कोने में दुबका हुआ पखेरू उड़ा, मैं न जान सकी। जब नौकरानी ने खिड़कियां खोलना शुरू किया तब मुझे उस पखेरू का अचानक ध्यान आया। मैंने पूछा, "किनारी ! वह चिड़िया कहां गयी ?" किनारी ने मेरी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा और अपने होठों पर स्मित रेखा बिखेरती हुई बोली, "उड़ गयी बीबी जी, फुर्र !" उसने अपने हाथ से बड़ा नाटकीय संकेत किया जिससे मुझे बरबस हंसी आ गयी और वह भी मेरी पलक झपकते, खुद फुर्र हो गयी !

एक सन्नाटा गहरा सन्नाटा छा गया। मैं उसे प्रश्न भरी दृष्टि से देखती रही, देखती रही, लेकिन सहसा मेरे

कानों मे किनारी के शब्द फिर । गूँजे, 'उड़ गयी बीबी जी फुर्र !'

उड़ गयी, उड़ गयी ! मैने सोचा,चिड़िया की तरह मुझे भी उड़ जाना चाहिए। यह सोने का पिंजरा व्यर्थ है, यह लोकप्रियता व्यर्थ है । जीवन में सबसे पहला सुख आत्मा का सुख है । वह नही, तो यह सब आडम्बर है, व्यर्थ है ।

प्रेमा के मानस पटल पर अतीत तैर आया—

वह एक प्रसिद्ध नर्तकी है । उसके रूप-सौन्दर्य और गुण की सर्वत्र चर्चा है । लोग उसका नृत्य देखने इस तरह चले आते है जिस तरह शहद के छत्ते पर मधु-मक्खियाँ । उससे मिलने के लिए बड़े राव-रईस तरसते है । लक्ष्मी उसके चरणों में है । फिर भी दिल में घुटन और व्यग्रता क्यों ? क्यों लगता है कि यह सब व्यर्थ है, व्यर्थ ! उसके सामने 'विप्र' का चेहरा घूम गया । विप्र, एक तरुण-युवक ! उसे दिल से चाहता था । उसने उससे मिलने की कितनी बार कोशिश की थी ! पर उसकी जालिम बुढ़िया माँ ने उसे घर में घुसने नही दिया था।

'बीबी जी, यह चित्रकार आपसे भेंट करना चाहता है'—एक सुबह उसकी नौकरानी किनारी ने एक तैल-चित्र उसके सामने रखा। वह चित्र ढंका हुआ था । उसने अनिच्छा से उसे उघाड़ा । वह हैरान रह गयी । घूँघट के अवगुंठन में उसका चित्र ! उसने उस चित्रकार को बुलाया, बिठाया, चाय पिलायी और पूछा, "आपने मेरा 'यह' चित्र बनाया है ?"

"जी !"

"मुझ से बिलकुल विपरीत !"

"जी, नारी का चरम सत्य तो यह है कि वह दुल्हन बनकर ससुराल जाए, माँ बनकर अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त करे और अपने गृहसंसार को आलोकित करे । आप नर्तकी बनकर अपने अनुपम रूप से केवल धन इकट्ठा कर रही हैं । शील, ममता और सौम्यता को भुलाकर आप केवल वाह्-वाह् लूट रही हैं । जीवन और रूप जीवन के स्थिर तत्त्व नहीं हैं । स्थिर तत्त्व है प्रेम और परिवार ।" उसने प्रेमा की ओर

नही देखा। नीची गर्दन किए हुए कहता ही रहा, "मैं एक महीने से आपका नृत्य देख रहा हूँ। आपके यहाँ लगे अश्लील चित्र देखता हूं तो मन कई सवालों से उद्विग्न हो जाता है। कई बार मिलने की चेष्टा की पर सफल नही हुआ। आपके नौकर और आपकी मां ने मुझे दुत्कार दिया जैसे मै कोई खुजलाया हुआ कुत्ता हूँ। आपको मालूम नही कि मैं एक लखपती बाप का बेटा हूँ। माँ-बाप बचपन मे ही मर गये। चाचा का आदर्शवादी बेटा रमेश मेरी देख-रेख करता है। वह नितान्त अध्यात्म-वादी और कठोर ब्रह्मचर्य का पक्षपाती है। आपके पोस्टर उसी ने जल-वाये थे। मुझे भी उसने सख्त हिदायत दे रखी है कि मैं आप जैसी निर्लज्ज-बेशर्म और चरित्रहीन नर्तकी के पास भी न फटकूँ। पर अपने को न कर सका। आपका व्यक्तित्व और सौन्दर्य बरबस मेरे मन पर छाता ही गया और मै आपसे मिलने के लिए बेचैन हो उठा।"

"आप चाहते क्या है ?" प्रेमा ने पूछा।

"सच-सच कहूँ ?"

"हाँ"

उसने एक पल प्रेमा की ओर देखा, फिर शर्म से सिर झुका लिया। फर्श की ओर देखता हुआ बोला, "मैं आपसे शादी करना चाहता हूं।"

जैसे एक महल थहरा कर गिर पड़ा हो, प्रेमा के दिल में जोर का धमाका हुआ। वह अवाक् सी उसे देखती रही। उसे कुछ भी कहते नहीं बना। लेकिन विप्र नीची गर्दन झुकाए हुए कह रहा था, "मैं आपसे शादी करना चाहता हूँ। सच, मैं आपके बिना नहीं रह सकता। हर घडी, हर पल, मुझे आप ही का ख्याल आता है। मै आपको कोई भी तकलीफ नहीं दूँगा। मेरे पास सब कुछ है।"

युवक की स्पष्ट बात ने प्रेमा के हृदय में मन्थन पैदा कर दिया। वह कुछ देर तक विचारती रही। उसने एक बार पारखी की तरह पैनी दृष्टि से विप्र को सिर से पाँव तक देखा और बोली, "मेरा अभी ऐसा कोई इरादा नहीं। मैंने इस पर कभी सोचा नहीं है।"

"सोच लीजिए। यह तो सत्य ही है कि आपकी जिन्दगी सदा ऐसी नहीं रहेगी। आपका यह रूप, यह चंचलता और यह चुस्ती सदा एक सी नहीं रहेगी। एक न एक दिन यह सब खत्म हो जाएगा। मेरा प्यार तब भी जीवित रहेगा –इसी गहराई के साथ।"

"आप अभी जा सकते हैं"—उसने बड़ी सहजता से कहा। "मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है। ऐसे प्रस्ताव लेकर मेरे पास बहुत से आते हैं। वे भी आपकी तरह सुन्दर और पैसे वाले होते हैं। एक करोड़पति भी मुझसे विवाह करने को तैयार है पर मेरा अभी ऐसी कोई इरादा नहीं।"

विप्र टूटा सा चला आया।

प्रेमा के बंगले के आगे उसकी परिचित बुढ़िया बैठी थी। उसने उसे एक सिक्का दिया और आगे बढ़ गई।

उसके जाने के बाद प्रेमा के मन में उथल-पुथल मच गयी। ऐसा निडर, निर्भीक व्यक्ति उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसने उसकी बनाई तस्वीर को देखा, एकदम सजी-सजायी दुल्हन। उसे क्या-क्या बना डाला है उसने। धीरे धीरे उसके मन में विप्र की तस्वीर गहरी, और गहरी होती गई।

उसकी माँ ने आकर उसके ध्यान को भंग किया। वह चौंक पड़ी। माँ ने कहा —"सेठ सम्पतलाल आए हैं। सुनो, जरा तरकीब से उनसे पाँच हजार रुपये माँगना, समझी!"

लेकिन वह सेठजी से एक पैसा भी नहीं माँग सकी। उसके मन पर तो विप्र आ रहा था! लग रहा था, विप्र की बातों की धुंध धीरे-धीरे उसके मन पर पर्तों की तरह जम रही है। वह अनमनी सी रही। सेठजी ने क्या कहा उसे जरा भी मालूम नहीं। वह उनकी हाँ में हाँ मिलाती रही। बीच-बीच में सेठजी झुँझला भी जाते थे, 'क्या बात है प्रेमा? आज तुम खोयी-खोयी क्यों हो?' तब उसने हँसकर उनके प्रश्न को टाल दिया था। माँ से शिकायत की थी। माँ ने गुस्सा होकर पूछा— "आज तुझे क्या हो गया छोकरी?"

"कुछ नही।"

"रुपये माँगे ?"

"नही।"

"क्यों ?"

"मेरे पास बहुत है।"

"जितना रुपया है, उससे भी बडी जिन्दगी है। ए छोकरी ! मेरे कान सवाल-जवाब सुनने के आदी नहीं है। मै अपने हुक्म की तामील चाहती हूँ। कान खोलकर सुन ले। कल से ऐसी कोई शिकायत नही होगी।"

प्रेमा ने कोई उत्तर नही दिया। न जाने क्यों आज उसकी आँखे गीली हो गयी ! उसकी इच्छा हुई कि वह फफक-फफक कर रोये। अपने आपको पीडा दे, खूब सताए। वह चिहुँककर बोली, "मेरी तबीयत खराब है। मैं सेठजी को नहीं रिझा सकती।" माँ स्तब्ध सी उसे निहारती रही। उसने मन ही मन कहा, 'क्या हो गया है इस छोकरी को ?' वह उस समय शान्त रही। जब प्रेमा भीतर जाने लगी तब उससे बोली, "यह जवानी जाने के बाद फिर नहीं आएगी, समझी !"

प्रेमा अपने बिस्तरे पर निढाल पड गयी। उसने सोचा—'जवानी बार-बार नहीं आती ! तब विप्र''''''हाँ, विप्र ने ही तो मेरे अन्तर में हलचल मचा दी है !' उसे फिर विप्र याद आने लगा। उसने उसका बनाया हुआ चित्र देखा। नीचे लिखा था—'दुल्हन'। वह उसे देखती रही। फिर उठी और थियेटर जाने की तैयारी करने लगी।

बाहर निकलते ही उसे बुढिया की खिलखिलाहट सुनायी दी। वह चौंक पड़ी। बुढ़िया ने टेढी आँखें करके अपना आँचल उसके आगे फैला दिया। उसने एक चवन्नी डाल दी। बुढ़िया सदा की तरह अबूझ हँसी हँसती हुई झोंपड़े में चली गयी। उसके निर्वाह का साधन आजकल प्रेमा के अतिथि ही थे। प्रेमा ने माँ से पूछा, "माँ, यह बुढ़िया कौन है ? यह मुझे इस तरह घूर-घूर कर क्यों देखती है ? मुझे इससे कभी-कभी डर

लगता है।"

"पगली है। भिखारिन है। बेकार मत डरो।"

लेकिन उसे सदा की तरह बुढ़िया की हँसी परेशान करती रही। विप्र ने कितनी सहजता से कहा था—मैं आपसे शादी करना चाहता हूँ।

उस रात वह गहरी नींद न सो पायी। सुबह फिर विप्र आया। उसने अपने प्रश्न का उत्तर चाहा, "आपने क्या सोचा?"

"किस पर?"

"शादी के लिए।"

'वह हँसी—फुर्सत ही नहीं मिली!"

"अब झूठ क्यों बोलती हैं?" उसने तपाक से कहा। "आपने जरूर मेरे बारे में सोचा है। न सोचा होता तो मुझे आपकी नौकरानी सम्मान से भीतर न जाने देती।"

प्रेमा के गालों पर लज्जा की रेखाएँ दौड़ गयीं। वह निरुद्देश्य इधर-उधर देखने लगी।

"आज आपकी नौकरानी के होठों पर भी अजीब मुस्कान थी। मैं झेंप गया। वह बड़ी चंचल है।" फिर विप्र उसकी कला की प्रशंसा करता रहा। बोला, "मैं इंजीनियर नहीं बनना चाहता था, परन्तु पिताजी की अन्तिम इच्छा यही थी इसलिए कर रहा हूँ। मैंने चित्रकारी अपना प्रिय शौक बना लिया है। शायद तुम्हारे सम्पर्क से मैं अपनी कला को मुखरित कर सकूँ।"

"आप जरूरत से ज्यादा सोच रहे हैं। मुझे······दरअसल···और वह एकाएक चुप हो गयी। विप्र उठने लगा। प्रेमा ने कहा, "आप मुझे आज शाम को जरूर मिलें।"

शाम को वे दोनों घूमने गये। पहली बार प्रेमा की माँ का माथा ठनका। वह सेठ सम्पतलाल के होते हुए किसी को भी अपने घर में नहीं आने देती। वह उस समय जहर का घूँट पीकर रह गयी। वे दोनों

सागर के किनारे एकान्त मे बड़ी देर तक बाते करते रहे। एकाएक प्रेमा ने पूछा, "विप्र वह बुढ़िया कौन है ?"

"वह भी एक दिन तुम्हारी तरह अभिनेत्री थी। शायद इसी बंगले में उसकी अपनी जवानी चली गयी, शक्ति समाप्त हो गयी। पीछे कोई नही रहा। रूप-यौवन के लोभी चले। शेष रह गये—ये दुर्दिन, दुत्कारें और पीड़ाएँ। उस समय उसने भी नही सोचा था कि कभी मेरा सब कुछ चला जाएगा। प्रेमा, जीवन दो चरम बिन्दुओ पर टिका है—दो विपरीत चरम बिन्दु। एक सुख का एक दुख का।"

प्रेमा बहुत उदास हो गयी। वह बोली ही नहीं। उसके कानों में बार-बार बुढ़िया की वह भेदभरी हँसी गूँज उठती थी। प्रेमा के सम्मुख मानों उस भेदभरी हँसी का रहस्य खुल गया—दर्पन की तरह साफ और स्पष्ट।

माँ ने पूछा, "खाना खाएगी ?"

"नहीं"—कहकर वह सो गयी। उसने निश्चय किया कि वह विप्र से ही शादी करेगी।

"तू शादी करेगी ? छिनाल कहीं की ! मारते-मारते तेरा दम निकाल दूँगी !" माँ ने डायन की तरह गुराकर कहा।

"निकाल दे दम ! मारना है तो अभी मार दे ! मैं विप्र से शादी करूँगी और जरूर करूँगी।"

"चुप रह !" माँ ने उसके गाल पर चाँटा मारा फिर अर्धविक्षिप्त सी वह प्रेमा पर झपट पड़ी और उसे पागल कुत्ते की तरह नोंचा। प्रेमा उसी दृढ़ता से बोली—"मैं उससे शादी करूँगी, जरूर करूँगी। तू मुझे रोकेगी तो मैं पुलिस की मदद लूँगी। तू मुझे शादी से नहीं रोक सकती, कभी नहीं रोक सकती।"

"फिर तू बाँके से शादी कर ले। तेरी तमन्ना पूरी हो जाएगी और वह दगा भी नहीं करेगा। अपना दलाल है, नमक हलाली ही करेगा !"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता? क्या मैंने दीना से शादी नहीं की थी? हमारे यहाँ ऐसा ही होता आया है।"

"फिर मुझे भी तेरी तरह अपनी बेटी को मारना-पीटना पड़ेगा, नचाना पड़ेगा। यह घिनौना सिलसिला कभी बन्द न होगा। अगर कोई सन्तान न हुई तो दरवाजे की बुढ़िया की तरह सड़कों पर भीख माँगनी पड़ेगी। तुझे केवल पैसा चाहिए, ये सारे पैसे ले ले। मैं तन के कपड़ों में ही विप्र के साथ चली जाऊँगी।"

माँ के अमानुषिक अत्याचार प्रेमा को अपने इरादे से नहीं डिगा सके। जिस्म मार खाते-खाते सूज गया, जगह-जगह खरोंचें पड़ गई पर वह अपने इरादे पर अटल रही।

उसके तीसरे दिन विप्र का बड़ा भाई रमेश आया। सादी पोशाक में भी उसका। रोबीला चेहरा बड़ा प्रभावशाली लग रहा था। उसने प्रेमा से बातचीत की धीरे-धीरे बातचीत की उग्रता से उत्तेजना में अपने होंठ काट लिए और चीखकर बोला--"यह भी नाटक है। उसके किशोरपन में तुमने अपने रूप से वासना को जाग्रत कर दिया है। वह क्या समझे कि तुम अभिनेत्रियों का यह भी एक अभिनय है! सोचती हो, उसकी सारी दौलत हड़प लूँ, समाज और परिवार से उसका सम्बन्ध तुड़वाकर उसकी प्रतिष्ठा को मटिया-मेट कर दूं! वाह रे जमाने, कैसे-कैसे निर्दयी लोग हैं! भाई से भाई को लड़ाएँगे, समाज में उसकी एक कौड़ी भी कीमत न रहने देंगे और फिर उसे बरबादियों के तूफान में छोड़कर कहीं चले जाएँगे।"

प्रेमा ने आँसू भरकर कहा "मुझे उसकी एक भी चीज नहीं चाहिए। मैं केवल उसे चाहती हूँ और वह मुझे। उसी ने मुझसे पहले प्यार किया था।"

"तुमसे एक नहीं, सैकड़ों लड़के प्यार करते हैं, ठीक विप्र की तरह। फिर तुमने विप्र को ही क्यों चुना?"

"इसीलिए कि वह कलाकार है।"

"नहीं वह लाखों का मालिक है। कलाकार तो इस धरती पर बहुत है। तुमने किसी गरीब कलाकार को क्यों नहीं चुना ?"

"प्यार जिससे हुआ, उसी को चुन लिया, रमेश बाबू ! मैं आपके पाँव पड़ती हूँ। मुझे इस चकाचौंध से निकलने दीजिए। मुझे किसी की बहू, किसी के घर की लाज और लक्ष्मी बनने दीजिए।" प्रेमा ने सच-मुच रमेश के पाँव पकड़ लिए। उसकी आँखें भर आयी थीं।

"तुम नर्तकी, वेश्या और बाजारू औरतें कभी किसी के घर की लाज नहीं बन सकती। तुम्हारा काम है—घर उजाड़ना और तबाह करना। वही तुम करोगी। तुम विप्र के जीवन से नहीं, उसके बाप के सपनों से खेल रही हो, उसके भाई के अरमानों से खेल रही हो। आज मैं उसका सगा भाई नहीं फिर भी उसके जीवन के लिए बड़े से बड़ा बलिदान दे सकता हूँ। यदि तुम चाहती हो कि हमारे आपस में किसी तरह की खाई न पड़े तो विप्र का ध्यान छोड़ दो। मुझे तुम जैसी औरतों से सख्त नफरत है, नफरत !"

"लेकिन···"

"वचन दो कि तुम आज से उससे नहीं मिलोगी। तुममें त्याग की कितनी क्षमता है, मैं देखना चाहता हूँ। प्रेम त्याग से ही महान् बनता है, समझी ?"

"मैं आपको वचन देती हूँ कि मैं आज से विप्र से नहीं मिलूँगी पर आपको भी मुझे एक वचन देना पड़ेगा कि आप मुझसे बराबर मिलते रहेंगे।"

"लेकिन मैं···।"

"सोच लीजिए।"

"अच्छा, मिलता रहूँगा।"

वह चला आया। प्रेमा बिस्तरे पर औंधी पड़कर फूट-फूटकर रो पड़ी। बहुत देर तक रोती रही। उसे जब गहरी नींद आ गयी तो उस की माँ अपने होठों पर कुटिल मुस्कान बिखेरती हुई बड़ी देर तक खड़ी

रही। फिर प्रसन्नता से उसका माथा चूमकर कमरे में अन्धेरा कर दिया।

× × ×

एक वर्ष समय के पंख पर सवार होकर न जाने कहाँ उड़ गया! वह भिखारिन किसी कार के नीचे आकर मर गयी थी। उसकी क्षत-विक्षत लाश को देखकर प्रेमा उस दिन खाना नहीं खा सकी। वह विप्र से इस बीच कभी नहीं मिली। कई बार विप्र ने चेष्टा भी की। उसने साफ इन-कार कर दिया। धीरे-धीरे विप्र उससे घृणा करने लगा। आदर्शवादी रमेश प्रेमा के प्यार में फँस गया। वह प्रेमा के प्यार में इस तरह अंधा हुआ कि उसने अपने भाई विप्र, परिवार और समाज किसी की भी परवाह नहीं की। दोनों भाईयों में बँटवारा हो गया। रमेश ने अपनी जायदाद का तीन चौथाई हिस्सा प्रेमा के नाम कर दिया और शेष वह शादी के अवसर पर भेंट करनेवाला था। यह खबर जब विप्र को मिली तब उसने उन दोनों का नाम लेकर थूक दिया। घोर घृणा मूर्त होकर उसके चेहरे पर चमक उठी। उसने जलते हुए स्वर में कहा, 'दोनों कमीने हैं, कमीने!'

ज्यों-ज्यों शादी का दिन करीब आने लगा त्यों-त्यों विप्र का मान-सिक संतुलन बिगड़ने लगा। प्रेमा से अलग होकर उसकी चित्रकला ने एक नयी करवट ली। उसने एक नये तरह की चित्रकारी प्रारम्भ की, उसने उसकी ख्याति देश-विदेशों में फैला दी। वह प्रसिद्ध कलाकार हो गया पर प्रेमा को वह घृणा करके भी न भूल पाया। आत्मा की गहरा-इयों में प्रेमा बस गयी थी। उसे रमेश पर बड़ा आश्चर्य होता था। जब-जब वह अकेला होता तब-तब रमेश के बारे में सोचता। उसे लगता कि मानव-चरित्र बड़ा ही दुर्बोध और दुर्निवार है। संसार में निश्छल प्रेम जैसा कुछ भी नहीं है। वे उत्तेजना और कुंठाएं उसकी कला को एक अजीब निखार दे रही थी।

प्रेमा से रमेश कहता, 'विप्र मुझसे बहुत जलता है प्रेमा। तुमने

मुझे ही सच्चा प्यार दिया है। मुझे जीवन की सहजता और स्वाभाविकता का ज्ञान कराया है। यही सच्चा आनन्द है कि आदमी केवल आदमी की तरह जिये मैं तुमसे शादी करूंगा। हमारे बच्चे होंगे। वे बच्चे सचमुच महान् प्रतिभासम्पन्न होंगे।"

प्रेमा उसकी भावुकता पर अंकुश लगाती, "आवेश में मुझे बाहों में लेने की कोशिश मत करो। यह सही कि मैं तुम्हारी हूँ पर शरीर-स्पर्श विवाह के उपरान्त ही सम्भव होगा।

"तुम्हें मुझ पर अविश्वास क्यों होता है प्रेमा? मैंने तुम्हारे लिए अपना आदर्श, धर्म और इज्जत छोड़ी, विप्र को दुश्मन बनाया। जो समाज मेरी राहों पर अपनी पलकें बिछा देता था, वही आज मुझ पर थूकता है। मेरी कोई प्रतिष्ठा नहीं। प्रेमा, तुमने मुझे पागल कर दिया है। अब अविश्वास की बात भी मुझे दुसह लगती है। फिर पन्द्रह दिन के बाद तो हमारी शादी भी होने वाली है।"

"पन्द्रह दिन और प्रतीक्षा करो।"

प्रेमा ने जान-बूझकर विवाह का निमन्त्रण विप्र को भिजवाया था। विप्र का मन जल उठा। घृणा, जो साँप की तरह कुँडली मारे उसके अन्तस में बैठी थी, फुफकार उठी। उसे लगा कि आदमी दूसरों की नीचता और कमीनापन क्यों सहता है? वह इस प्रश्न पर बड़ी देर तक विचारता रहा। धीरे-धीरे उसके चेहरे की शालीनता और सौम्यता लुप्त होने लगी। उसने निर्णय किया, आदमी इसलिए सहता है कि वह दूसरों से कमजोर है। यह कमजोरी ही उसे सब कुछ सहने को बाध्य करती है। वह उठा, कपड़े पहने और प्रेमा की शादी में शामिल होने के लिए चल पड़ा।

भीड़ का समुद्र प्रेमा के बँगले पर उमड़ पड़ा था। बड़े-बड़े सरकारी अफसर और कलाकार वहाँ उपस्थित थे। वैदिक पद्धति से विवाह होगा, इसलिए मंडप भी सजाया गया था। शहनाई बज रही थी। प्रेमा दुल्हन बन रही थी। सजते-संवरते उसने अपने समक्ष आज विप्र का वही वेश-

या हुआ विप्र दुल्हन रख लिया था। उसकी इच्छा थी कि वह ठीक वैसे ही गहने पहनेगी, वैसा ही मेक-अप करेगी। सब कुछ कर चुकने पर वह मंडप की ओर चली। रमेश अपनी पोशाक में बहुत जँच रहा था। विप्र धीरे-धीरे आगे बढ़ा। उसने मन-ही-मन दोहराया, 'नीचता और कमीनापन सहना भी अन्याय होता है।' उसने अपनी जेब पर हाथ रखा।

लोग प्रेमा के अद्वितीय रूप को देखने मे मग्न थे। विप्र की आँखें भी कुछ क्षण उस मुखचन्द्र को देखने के लिये ठहर गयीं। मन का आक्रोश मिट गया एक पल के लिए। फिर वह सावधान हुआ और आगे बढ़ा।

प्रेमा वेदी के समीप पहुँच गयी थी। रमेश ने उसकी ओर तृष्णा से देखा। एक धीमी सी आवाज आयी—'कुछ भी हो, सारी प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर भी रमेश ने बड़ा कीमती हीरा पाया है।'

विप्र ने सोचा, 'मैं खेल खत्म कर दूंगा।' वह भीड़ को चीरता हुआ बढ रहा था। सागर की तरह अनेक लहरें उसके मस्तिष्क को मथ रही थी। तभी अकस्मात् प्रेमा ने घोषणा की, "यह शादी नहीं होगी।"

"क्या कहती हो प्रेमा ? तुम्हारा दिमाग ठीक है ?" रमेश ने कांपते स्वर में पूछा।

"बिल्कुल"—प्रेमा ने प्रभु के भक्त की तरह अपने दोनों हाथ उठा-कर कहा। "मैं यह शादी नहीं करूंगी, बरातियो ! यह सब नाटक था, एक खेल था। वह रमेशजी, जो आज से एक साल पहले ब्रह्मचर्य, आदर्श और सात्विक जीवन के हामी थे और हम जैसी लड़कियों को बालक कहकर उनसे दूर तक रहने के नारे लगाते थे, आज खुद इस कीचड़ के लिए अपना सर्वस्व विसर्जन कर चुके हैं। मैं इनसे पूछती हूँ कि अब मेरे खानदान और खून में कौन सा अन्तर आ गया है ? मैं वही हूँ जो आज से एक साल पहले थी। मैं इनसे पूछती हूँ कि जो औरत कभी भी किसी के घर की लाज नहीं बन सकती, वह आज इनकी दुल्हन, पत्नी और अर्धांगिनी कैसे बन सकती है ? ये समाज के ठेकेदार और सुधारक, हम जैसी विवश नारियों के जीवन के उद्धार की कभी नहीं सोचते। संयोगवश

कोई हमें नारकीय जीवन से निकालने की भी चेष्टा करता है तो ये बड़ी-कोई दीवारें खड़ी कर देते हैं। कहते हैं, तेरी जैसी औरतें प्यार को केवल बड़ी नाटक समझती है क्यों रमेशजी, क्या मैं झूठ कहती हूँ? मैंने सच्चे हृदय से रमेशजी के भाई को प्यार किया था। मैं उनकी दुल्हन बनकर गृहस्थी बसाना चाहती थी। मैंने उनके साथ जीवन की स्वाभाविकता के कई सुनहरे सपने देखे थे। इन्होंने उन सब पर तुषारपात कर दिया। तब मैंने भी निश्चय किया था कि इन्हें ऐसा सबक दूँगी कि ये तो क्या इनके जैसे हजारों सुधारकों की आँखें खुल जाएँगी। मैंने इनसे केवल प्यार का नाटक खेला था। इन्हें जिस तरह चाहा, उँगलियों पर नचाया। इन्होंने मेरे पीछे किसी को कुछ नहीं समझा। अपनी सारी जायदाद भी धीरे-धीरे मेरे नाम करते गये। मेरी लालची माँ भी मेरे इस नाटक से खुश थी। आखिर जीत मेरी ही हुई। मैं इनसे पूछती हूँ कि जिस व्यक्ति से मैंने सच्चा प्यार किया, उसकी हालत क्या हो सकती है? रमेशजी से मैंने केवल प्रेम का ढोंग किया है। ओह, मैंने एक वर्ष-तक कितनी मर्मान्तक वेदनाएँ सही हैं! विप्र मेरे प्यार में पागल से हो गये हैं। वह मेरे नाम पर थूकता है। मैंने सब कुछ सहा।" यह कहकर वह रो पड़ी। उसने आँसुओं को पोंछते हुए रमेश से कहा; "लीजिए, अपनी जायदादके सारे कागजात और चले जाइए। मुझे केवल आपके ढोंग को मिटाना था ताकि आप यह जान लें कि प्रकृति के सहज व व्यवस्थित जीवन जीने का सभी इन्सान को बराबर का हक है।"

रमेश पत्थर हो गया। विप्र को पसीना आ गया। उसने दुबारा जेब पर हाथ नहीं रखा। वह यंत्रवत प्रेमा के सम्मुख चला गया। प्रेमा ने उसे देखा और उसने प्रेमा को। दोनों की आँखों में आँसू समाये नहीं। किसी ने पीछे से आवाज लगायी, 'विप्र की शादी प्रेमा से कर दी जाए।'

वेद-मंत्र गूँजने लगे। रमेश का कहीं पता नहीं था।

एक मुस्कान : एक जिन्दगी

तिजारत

मैं तिजारत हूं। आदि काल से लोग मेरा प्रयोग कर रहे हैं। आदान-प्रदान के रूप में, सिक्कों और वस्तुओं के रूप में, अनेक तरीकों से, अनेक रूप में। मेरा कोई धर्म नही, कोई नैतिकता नही और कोई मान मर्यादा नहीं। हरएक ने मुझे अपनी सुख-सुविधा के लिए हर सांचे में ढाला। लेकिन आज मैं दुखी हूँ। इस घर में मेरी एक बच्ची का तिजारत किया जा रहा है। वह बारह साल की अबोध और अलौकिक कन्या जिसके चेहरे पर खुशियो का समन्दर लहरा रहा है। जिसकी बड़ी-बड़ी आँखों मे यौवन की लाज के अंकुर फूटने लगे हैं। जिसकी गर्म-गर्म साँसों में अनागत उन्माद की खुशबू है। उस कन्या को उसकी माँ और उसके बाप मिलकर बेचना चाहते हैं याने तिजारत करना चाहते है। कितनी बड़ी बेइन्साफी है, कितना बड़ा गुनाह है, पर हमारे देश में ऐसे जोर-जुल्म ज्यादतियाँ सरेआम चलती आयी है।

वह आपका नया मेहमान है। वह बारह साल की कन्या को अपनी अर्धांगिनी बनायेगा। उसकी उम्र ४० के लगभग है। उसकी आंखों की चमकती हुई वासना के सारे दांत गिर गये हैं। वह एक विद्रूप-सा लगता है। उसके साँसों की गर्मी बुझ गयी है। इसका यौवन इससे अलग होकर इसकी मृतक पत्नी की अजान संतान में चला गया है।

यह इस कन्या को वरेगा ।

तिजारत शुरू । मेरी आँखें भर आती है । तीन हजार में एक कन्या का तिजारत हो जाता है । मैं जोर से चीखती हूं, चिल्लाती हूँ कि मेरा ऐसा दुरुपयोग मत करो, ऐ समाज और धर्म के ठेकेदारों ! देखो, इस तिजारत को देखो, यह मासूम फूल किस जल्लाद को सौंपा जा रहा है । अरे देखो न, इसके पखुरियों से गुलाबी होंठों को जो अपनी मासूमियत की वजह से तुम लोगों से प्रार्थना भी नहीं कर सकते है । उसका ज्ञान कानून के दरवाजे भी नहीं खटखटा सकता क्योंकि यह एक माटी की सबसे पवित्र और खामोश तस्वीर है । हम बहरे और अन्धे हैं ।

हवन की अग्नि

मन्त्रों, पावन ऋचाओं से दिग्दिगन्त गुञ्जित है आहुतियाँ दी जा रही हैं । मेरे समक्ष बुढ़ापा और बचपन दूल्हा-दुल्हिन बने बैठे हैं । औरतें रंग-रंगीले, चटकदार और दमकते झालरों वाले और सलमे-सितारों वाले ओढ़ने ओढ़े मंगल-गीत गा रही हैं । मेरी इच्छा हो रही है कि मैं चमककर इन सबको लील जाऊं, जो बूढ़े के साथ एक किशोरी को सौंप रहे है ।''' लेकिन ये चतुर-पतित लोग मुझे बड़ी खूबी से मर्यादा में रख रहे हैं । मैं हवन की पवित्र अग्नि आज पाप को जलाने में असमर्थ हूँ । सीता को अपने अनल-आँचल में लेकर उसकी मर्यादा को रखा पर आज मैं इतनी शक्तिहीन हो गयी हूँ कि एक अबोध बालिका को नहीं बचा सकती । लो, फेरे भी पड़ गये । चहकती हुई बुलबुल परायी हो गयी । कोई गा रहा है—बाबुल छोड़ चली तेरा देश '''। सच, यह छोड़ गयी । अपना अंगना, अपनी सखियाँ और अपना बचपन !

शैया के फूल

यह बूढ़ा उस किशोरी की ओर आ रहा है । किशोरी उसे थिरिमत-सी देखती है । हम फूल, सुहाग रात के मादक और खुशबू बिखेरने वाले फूल, आज बिना स्पर्श के ही मुर्झा गये हैं । अपनी खुशबू को हम समेट-

ही छोड़ आये है। निर्गन्ध वाले फूल है, मुर्दा और रुष्ट।

किशोरी आती है। चुपचाप बैठ जाती है। एक-दो को उसके शरीर का स्पर्श होता है। कोई उत्तेजना और प्रतिक्रिया नहीं। वह बड़ी सहजता से एक फूल उठाती है और उसे सूँघती है। फिर एक पंखुरी तोड़कर बिखेर देती है। हम हँस पड़ते है। सोचते है—अभी बूढ़ा आकर तेरी भी पंखुरियाँ नोच डालेगा। हम फूल उदास हो गये है। सूने घर का सन्नाटा हम में छा गया है।

आह ह! बूढा आ रहा है। हम घृणा से भर जाते है। जोर-जोर से उस पर थूक रहे है पर उसकी आँखों मे मृत्यु को प्राप्त करने वाली दन्तहीन वासना दहक रही है। वह मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिक की तरह सोच-सोचकर धीरे-धीरे कदम उठा रहा है। किशोरी उसके चेहरे की ओर टुकुर-टुकुर देख रही है। उसकी आँखों में प्रश्न है। मन मे द्वन्द्व है। बूढा उसकी उस तीखी और भोली नजर को नहीं सह सकता है। घबरा जाता है। झेंप जाता है। पर उसकी नजर बूढ़े के चेहरे पर जमी हुई है। अनायास वह कह देती है, "बाबा।"

विद्युल्लतायें क्रोध करके किसी पर टूट पड़ी हों, ऐसा महसूस हुआ उस बूढ़े को। वह साँप की तरह अपने होठों पर अपनी जीभ फेरता हुआ बोला, "मै-मैं, क्या तेरा बाबा हूँ? बोल, बोल, क्या मैं तेरा बाबा हूँ।" बूढ़े का मुख विकृतियों से भर आता है।

किशोरी उसी भोलेपन में कहती है, "कुछ लगते हो वैसे ही।"

"नहीं, मै तुम्हारा पति हूँ, पति।"

"ओह!" किशोरी लपककर अपना मुँह घूँघट में छुपा लेती है और हम अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं क्योंकि बूढ़े की बाहे फैल गयी थीं।

× × ×

यौवन का उन्माद

मैंने आखिर उसके अंग-अंग में प्रविष्ट कर लिया। मै अनंग का सबसे शक्तिशाली शस्त्र हूँ। देवताओं से लेकर जानवरों के अंगों में प्रवेश

करके उन्हें अंधा कर देता हूँ।

किशोरी का सारा शरीर मुझ मे डूब गया था। अब वह बूढ़ा खाँसने भी लगा था और जब किशोरी आकाश से चाँदनी बरसाकर उसे भिगो देती तब वह मादक अंगड़ाइयों के साथ न जाने क्या सोचती कि उसके नयन अश्रुओं से भर आते और वह बूढ़े की ओर लिपटने की चेष्टा करती। बूढ़ा, घाटियों में खोई हुई रास्तों से टकराती जैसी खाँसी करने लगता और वह तड़पकर कहता, "शर्म नहीं आती, बेशर्मी की हद है, पति बीमार है और तुझे अठखेलियाँ सूझ रही है।"

वह संसार की अप्सरा की तरह मादक स्वर में बोली, "देखो, आकाश में चन्दा मुस्करा रहा है, उसकी चाँदनी मेरे अंग-अंग में अग्नि जला रही है। हवा भी नस-नस में प्यार जगा रही है।"

"ऐसी आग है तो खिड़की में बैठ जा। पर गृहस्थी की औरतें जोबन को लेकर इस तरह हाय-हाय नहीं मचातीं। जवानी सबको आती है, बहुत के पति भी बूढ़े होते हैं पर तेरा नखरा तो 'माती' जहान से ही अलग है।"

उसका सारा प्यार दुख के छोटे से सरोवर मे सिमट जाता। वासना और उत्तेजना बर्फ की तरह ठण्डी पड़ जाती। वह अपने भाग्य को कोसती हुई सो जाती।

पर मैं उन्माद हूँ।

मैं जिस पर सवार हो गया और अगर उसे शान्ति नहीं मिली तो वह भटक जायेगी। वह रात भर सो नहीं पाती, दिन को चैन नहीं पड़ता। उसका हृदय रात-दिन भीम गर्जना करता रहता है और उसकी आहों से उसके घर का वातावरण जलनमय रहता है। उसे बार-बार भ्रम होता है कि इस घर में आग लगने वाली है। उसका और उसके पति का झगड़ा छोटी-छोटी बात पर हो जाता था।

मैं उन्माद हूँ, एक तरह का पागलपन।

छिनाल का प्रवेश

मैं छिनाल हूँ वैसे मेरे कई पर्यायवाची शब्द हैं। मैं तभी किसी औरत के सिर पर सुशोभित होती हूँ जब वह अपने पति के होते हुए दूसरे से प्यार करे।

प्यार !

श्री गालिब के शब्दों में यह वह आग है कि जो ना लगाये ना लगे और न बुझाये न बुझे। यह आग तेज लहरों की तरह इसकी नस-नस में दौड़ने लगी है। इसके वश में होने के बाद प्रेमी और प्रेमिका मृत्युंजयी बन जाते हैं। निडर, निर्भीक बन जाते हैं, स्वतन्त्र हो जाते हैं। शायद आप जानते होंगे पंजाब की सोनी नदी पार करके जाती थी और राजस्थान की चनणा आधी रात को 'रामू' का द्वार खटखटाती थी और यह किशोरी।

"यह दवा लो।" एक नीली आँखों वाले युवक पड़ोसी ने बड़ी विनम्रता से किशोरी के हाथ में शीशी दे दी।

"कुछ फल भी लाने हैं।"

"दोपहर को ला दूँगा।" युवक चला गया।

किशोरी का पति कुछ अधिक बीमार है। तरुण कन्हैया पास वाले मोहल्ले में पान की दूकान करता है, बीड़ी बेचता है। गेहुआ रंग है पर आँखें जैसे सृष्टि का सारा प्यार चुप व खामोश होकर उसकी आँखों में सो गया है। बूढे को कन्हैया जरा भी पसन्द नहीं है पर वह अभी विवश है। दवा और फल नहीं आये तो वह मर सकता है और उसकी बूढ़ी तमन्नाएँ मृत्यु का बड़ा भय खाती हैं। वह मरना नहीं चाहता। 'उसकी सिसकती हुई साँस हर घड़ी जीने की कामना और प्रभु से चिरायु की प्रार्थना करता है।'

दोपहर हो गयी।

कन्हैया फल लेकर आ गया। उसने फल देने के लिए हाथ बढ़ाया। दोनों के हाथ छू गये। रोमांच हो गया—किशोरी के सारे बदन में।

उसने भरपूर दृष्टि से कन्हैया की ओर देखा। नजरें टकरायी।

"माफ करना।"

"क्यों ?"

"आपके हाथ को मेरे हाथ ने छू लिया न ?"

"कोई बात नहीं।"

बूढा भीतर से बड़बड़ा उठा। उसका बड़बड़ाना कम और खाँसी तेज थी। उसने क्या कहा, वे दोनों नहीं सुन सके। कन्हैया ने भयभीत स्वर मे कहा, "वे नाराज हो रहे है। शायद उन्हे मेरा यहाँ आना अच्छा नही लगता है।"

"न लगता है तो न लगे, मुझे अच्छा लगता है। आप शाम को जरूर आना। मै आपको खीर बनाकर खिलाऊँगी। आज मेरे विवाह की सात ी वर्षगाँठ है।"

"जरूर आऊँगा।"

मैं उसमे प्रवेश कर गयी। बूढा भीतर से चीखा, "किससे इश्क लड़ा रही है छिनाल ?"

मैं हँस पडी।

किशोरी कन्हैया को विदा करके भीतर गयी। जोर से पाँव पटक कर कहा, "क्यों शोर मचा रखा है। मेरा जी तो चूहे की तरह कुतर-कुतर कर खा गये। क्या अब इस तन को भी खाओगे।"

"अब की बार मुझे अच्छा होने दे। उस कन्हैया के बच्चे को जिन्दा चबा जाऊँगा।"

किशोरी ने घृणा से बूढे को देखा और वह बाहर चली गयी।

विद्रोह

मैं विद्रोह हूँ। जब शोषण अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाता है तब मेरा आविर्भाव होता है।

किशोरी में मेरा आविर्भाव हो गया। वह अब खुलेआम अपने प्रेमी कन्हैया को अपने घर बुलाती है और वह रात के सूने पहरों में उससे

भावुकतापूर्ण बातें करती है। उसका पति उसे डाँटता है, पीटने की धमकी देता है, पड़ौसी लोगों को उकसाता है पर वह किसी की परवाह नहीं करती। उसने साफ-साफ कह दिया, "आपका भला इसी में है कि आप चुपचाप दो जून रोटियाँ खा लिया करें। आपकी मेरी कोई जोड़ी नहीं, व्यर्थ में आप जरा से समझौते को तिल का ताड़ बना देंगे।"

बूढा उसकी बात को नहीं सुनता है। वह शोरगुल मचाता है। किशोरी तंग आकर कहती है, "मैं कन्हैया को नहीं छोड़ सकती, वह मेरा असली जीवन है। और आप भी कान खोलकर सुन लीजिए कि पानी सिर तक न आने पाये, यदि आ गया तो मैं यहाँ से सदा के लिए चली जाऊँगी।"

"कैसे जायेगी ? मैं तेरा झोंटा पकड़कर बन्द नहीं कर दूँगा।"

वह विचलित स्वर में जवाब देती है "आप में इतनी ताकत आ जाती तो मुझे यह सब क्यों करना पड़ता। वर्षों से आपसे समझौता करती आयी हूँ। अब नहीं सहा जाता। यदि ऐसा ही जीवन है तो ऐसे जीवन को तुरन्त छोड़ देना चाहिए। लेकिन मुझे आपके बुढ़ापे पर तरस आता है। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे सुख से जीने दीजिए और अपने को भी। कम-से-कम मैं आपकी सेवा तो करती हूँ।"

"सेवा नहीं करेगी तो जायेगी कहाँ ? नकद कलदार दिए हैं।"

"मुझे नहीं, मेरे बाप को।"

इसी तरह गर्मा-गर्मी !

एक रात

"तू उस लफंगे को छोड़ेगी या नहीं।"

"नहीं।"

"अच्छी तरह सोच लिया।"

"सोच लिया।" किशोरी के स्वर में दृढ़ता।

"मैं तेरी जान ले लूँगा।"

"ले लीजिए अगर इतना दम हो तो ?" उसने लापरवाही से कहा और अपने काम में लग गयी।

बूढ़ा ठीक हो गया। सचमुच एक दिन उसने किशोरी के सिर पर लकड़ी का प्रहार कर दिया।

मैंने किशोरी की हृदय के समस्त शक्तियों को ललकारा। उसने मुझे अपना लिया। आँखों में आँसू भरकर वह रुंधे स्वर में बोली, "तुमने मुझे पीटा, मेरी सेवाओं का यह बदला दिया। जा, कल मैं तुम्हें छोड़कर उसके साथ चली जाऊँगी, तुम्हे जो करना है सो कर लो।"

छुरी ने साथ न दिया

मैं छुरी हूँ। दोपहर की धूप में मेरी लपलपाती जीभ बहुत ही भयानक लगती है। मैं बूढ़े के हाथ में हूँ और बूढ़ा अपने काँपते हाथों से किसी का खून करने के लिए उतावला हो रहा है।

किशोरी घर से गायब है। कन्हैया भी नहीं है। एकाएक एक आदमी यह खबर लाकर बूढ़े को देता है कि किशोरी और कन्हैया बाजार से आ रहे हैं। बूढ़ा वहाँ से तूफान की गति से भागता है। उसके सिर पर खून सवार है। उसके हाथ में मैं नंगी हूँ। लोग विमूढ़ से भागते हुए बूढ़े को देख रहे हैं। वह बड़बड़ा रहा है। "मैं छिनाल की जान ले लूँगा, मैंने कलदार दिए हैं, मैं......मैं......।"

वह उन दोनों के पास गया। किशोरी कन्हैया से चिपट गयी। बूढ़े ने मुझे संभाला। मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। उस मासूम पर चलने की मेरी इच्छा नहीं हुई।

बूढ़े ने घृणा से होंठ काटते हुए कहा, "मैं तेरा खून पी जाऊँगा, रंडी !"

अचानक किशोरी संभली। उसने बूढ़े को चेतावनी दी, "होश की बात करो।"

पर उसने प्रहार किया। किशोरी ने गुस्से में एक धक्का दिया। बूढ़ा तुरन्त लुढ़क गया। मैं उसके पेट में इस तरह घुस गयी जिस तरह

वह ककड़ी हो। बूढ़ा तड़पकर कर वहीं मर गया।

मैं कानून हूँ

मैं कानून हूँ। अन्धा और बहरा। मेरे सच्चे साथी गवाह हैं। गवाहों के आधार पर मैंने किशोरी का पक्ष लिया और उसे बाइज्जत बरी कर दिया गया क्योंकि उसने अपने बूढ़े पति पर कोई वार नहीं किया था। उसने अन्तिम निर्णय भी विवशता के कारण किया वर्ना उसने बूढ़े से बहुत समझौता करने की कोशिश की थी। वह आजाद है, आजाद।

जिन्दगी

मैं जिन्दगी हूँ। माटी मेरा जन्म-स्थान है और माटी मेरा मरण-तीर्थ। मैं सदा नये रंग और नया जोश लेकर पैदा होती हूँ और कभी-कभी एक जन्म में कई रूप और कई रंग बदल लेती हूँ।

किशोरी एक बच्ची की माँ है और कन्हैया नये शहर में पान की दूकान करता है। शाम को जब वह थकामांदा आता है तब किशोरी उसके बालों को सहलाती है और कन्हैया अपनी सारी थकान भूलकर उसके गालों का चुम्बन ले लेता है। मैं मुस्करा उठती हूँ। चराचर मुस्करा उठते हैं। आकाश और धरा मुस्करा उठते हैं क्योंकि जिन्दगी की परिभाषा तभी ही सही होती है जब वह दुखों के समन्दर में रहकर भी क्षण भर के लिए मुस्करा दे। वही मुस्कान जिन्दगी की अपनी है और वह जिन्दगी किशोरी के होंठों पर थिरका करती है अभी और आजकल।

कोई सम्बन्ध नहीं

गर्मी की दोपहर। नीला आकाश चुप। सुनसान गली। हवा का कहीं नामोनिशान नहीं जैसे किसी जादूगरनी ने उसे अपने आँचल मे बन्द कर लिया हो।

सेठ की बड़ी हवेली के मुख्य दरवाजे की पहली बैठक में रूपली बैठी थी। सीमेन्ट की दीवारें और सीमेन्ट का फर्श। रूपली बार-बार पंखा झलती थी और हर दूसरे पल तड़पकर कहती थी, "इससे सर्दी का मौसम लाख दर्जे अच्छा। ऐसी गर्मी कभर नहीं देखी।"

फिर वह उठी। उसने अपने लँहगे को झटका दिया। ओढ़नी को उतार फेंका और काँचली को व्यवस्थित करती हुई वह दरवाजे के बीचोंबीच खड़ी होकर सूनी गली को देखने लगी देखते-देखते वह फिर बड़बड़ायी, "मेरा बेटा किसन अभी तक नहीं आया। बहुत देर हो गयी है। धूप के निशान से लगता है कि जरूर दो बज गये है। राम जाने उसने कुछ खाया-पिया है या नहीं? वैसे मैंने उसे एक रुपया दे दिया था और जाते-जाते हिदायत भी दे दी थी कि जब भूख लगे तब कुछ खा लेना।" और सहसा उसके चेहरे पर संघर्ष की रेखाएँ दौड़ी और निराशा की गहरी पर्त उसके संघर्षशील चेहरे पर आ गयी। वह कुछ विचलित-सी लगी और किसी आशंका से घबराकर हवेली में स्थापित खानदानी हनुमान की मूर्ति के

समक्ष जा खड़ी हुई। उसने उन्हें हाथ जोड़े। शीश नवाया। प्रार्थना भरे स्वर मे बोली, "हे प्रभु, मेरे लाडले की नौकरी जरूर लगा देना। मैं तीन माह तक तेरा व्रत रखूंगी।" वह श्रद्धाभिभूत हो गयी। उसके होंठ तड़पने लगे। आँखे सजल हो गयीं। वह पुनः पूर्ववत् जगह पर आकर खड़ी हो गयी''''''बेटे की प्रतीक्षा मे।

आखिर वह उकता गयी। आकर बिछी हुई 'बोरी' पर बैठ गयी। तभी उसे कदमो की आहट सुनायी पड़ी। वह तुरन्त उठी। उसके निराश चेहरे पर आशा की चमक जाग उठी। होठों पर मुस्कान। उसने देखा''' उसका लाडला आ रहा है। उसका सारा चेहरा पसीने की बूँदों से निचिन्न लग रहा है। कपड़े पसीने से तर हो गये हैं। चेहरा गर्मी से लाल और आँखें थकी-थकी-सी हैं।

माँ को देखते ही किसन में नयी स्फूर्ति आ गयी। वह भागकर आया और माँ का चरण-स्पर्श करके बोला, "माँ-माँ, मेरी नौकरी लग गई है।"

"लग गयी।" माँ चौंक-सी पड़ी, और उसने अपने बेटे को आलिंगन में भर लिया। वह विचलित स्वर में बोली, "आज मेरा मनोरथ और जीवन, दोनों सफल हो गये। बेटे! मैंने इस दिन के लिए भगीरथी तपस्या की थी। ताप में जली और आग पर चली। क्या-क्या कष्ट नहीं उठाये? पर आज सब ठीक हो गया। सब कुछ मिल गया। अब तो मैं तेरा ब्याह रचाऊँगी। एक सोवणी-मोवणी बहू लाऊँगी। दो रिश्ते आये भी हैं।"

"जब देखो''''''ब्याह-ब्याह-ब्याह! अरी माँ, बहू तो बाद में ले आना, पहले पेट-पूजा तो करा दे।"

"तू हाथ-मुँह धो, मैं अभी खाना परोसती हूँ।"

किसन खाना खाने लगा। दूसरा कौर लेने के साथ ही उसने कहा, "माँ, यह ले तेरा रुपया। भूख तो बड़ी लगी थी पर मुझ से पैसा खर्च नहीं हुआ।"

"क्यों?"

"इसलिए कि तू एक-एक पैसा बड़ी मेहनत-मजदूरी से कमाती है। माँ, आज तेरे सब दुख दूर हो गये। आज से मैं तुझे कुछ भी करने नहीं दूँगा। पर……।" वह कहता-कहता चुप हो गया।

"पर क्या ? तू चुप क्यों हो गया ?"

"पर माँ मेरी नौकरी यहाँ नहीं लगी है। हमें बीकानेर से जयपुर चलना पड़ेगा।"

"जयपुर ! नहीं बेटा, नहीं। हम इस शहर को छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। यह अपना शहर है। यहाँ हमारे दुख-दर्द को लोग अपनों की तरह बेटा लेते हैं। वहाँ पराये लोग होंगे। पराये हमारी पीर को नहीं जान पायेंगे। सब दुबारा बसाना पड़ेगा।"

"जब नौकरी करनी है तब यह सब करना ही पड़ेगा।"

रूपली एकदम उदास हो गयी। वह इस शहर को कैसे छोड़ सकती है ? इस शहर से उसका आत्मिक बन्धन है। अटूट मोह है। नहीं-नहीं, वह इस शहर को नहीं छोड़ सकती। वह किशन को पंखा झलती हुई बोली, "हम इस शहर को नहीं छोड़ सकते बेटे ! इस शहर के अच्छे और सच्चे लोगों ने तेरी माँ को तब आश्रय दिया था जब तेरी माँ एकदम असहाय थी, उसका कोई नहीं था। कम-से-कम, मैं तो इस शहर को नहीं छोड़ सकती।"

"खैर, अभी इस बात को छोड़।" उसने चप्पू कर दिया। गमछे से हाथ पोंछता हुआ वह बोला, "माँ गर्मी के कारण मेरे सिर में दर्द होने लगा है इसलिए मैं सोता हूँ।"

देखते-देखते किशन खर्राटे भरने लगा। लेकिन रूपली को एक भी झपकी नहीं आयी। इस शहर को छोड़ने की चिन्ता उसे हजारों बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा देने लगी।

तभी रूपली को गली में फिर कदमों की आहट सुनाई पड़ी।

आहट के साथ लाठी की ठक्-ठक्।

"कौन आया होगा इस धूप में।" उसने अपने आप से पूछा।

आहट और नजदीक आ गयी साथ में लाठी की भी ठक्-ठक्।

वह उठी। आहट और पास आ गयी। उसने बाहर झाँककर देखा।

अप्रत्याशित कोई दीवार भड़भड़ाहट के साथ गिर पड़ी हो, ऐसा धमाका हुआ रूपली के मन में। उसने एक बार उन दोनों आगन्तुकों को फिर से देखा और पलक झपकते उसने भड़ाक के साथ दरवाजा बन्द कर लिया। उसकी साँस तेज हो गयी और हृदय में तूफान-सा मच गया।

बाहर से टूटती-काँपती आवाज आयी, "किवाड़ खोलो, बहू किवाड़ खोलो।"

रूपली को महसूस हुआ कि उसका खून बहुत तेज चलने लगा है। यदि वह कुछ देर और खड़ी रही तो गिर पड़ेगी। अचेत हो जायेगी।

खट्-खट्-खट् कुंडी की आवाज।

रूपली पवन वेग-सी भीतर चली गयी। जाकर वह इस तरह बैठी मानो वह कोई चोर हो और उसे पकड़ने के लिए पुलिस आ गयी हो। क्षण भर का सन्नाटा बहुत दुस्सह हो गया और इस बीच रूपली ने यही सोचा, 'ये दोनों यहाँ कैसे पहुँच गये?'

"बहू दरवाजा खोलो।" पहले वाली आवाज और वही कुंडी की खट्-खट्। खट्-खट् बढ़ती गयी। गहरी नींद में मस्त किसन अचकचा कर उठा। वह पसीने से भीग गया था। उसकी आँखें लाल थीं और बाल अस्त-व्यस्त। वह लपककर दरवाजा खोलने लगा। तभी रूपली भागती हुई लपकी, "दरवाजा मत खोलो, दरवाजा मत खोलो।" और उसने किसन के "भोगल" खोलते हुए हाथों पर अपने हाथ रख दिये। वह बहुत घबराई हुई थी और एक अजीब भय उसके चेहरे पर, उसकी फैलती आँखों में छा गया था।

"क्यों"— किसन ने विस्मय से पूछा।

"बस, तुम फाटक मत खोलो।"

"लेकिन क्यों" उसने नाराजी के साथ अपने शब्दों पर जोर दिया।

रूपली निरुत्तर हो गई। कुछ नहीं बोली वह। जड़ हो गयी।

"बोलती क्यों नहीं। मैं क्यों नहीं दरवाजा खोलूं? क्या तूने कोई चोरी की या किसी का गला काटा है?"

रूपली यंत्रवत वहाँ से हट गयी। किसन ने किवाड़ खोल दिये। दो अपरचित व्यक्ति खड़े थे। एक लाठी के सहारे खड़ा बूढ़ा और दूजा प्रौढ़ जिसके सारे बाल सन की तरह सफेद थे। उसकी गहरी झुर्रियाँ जो अभी बहुत ही गहरी हो गयी थी। वह बूढ़ा उसे देखते ही बोला, "बेटा क्या हम भीतर आ सकते है? बाहर बड़ी धूप है। उफ। आकाश आग बरसा रहा है।"

"आइए।" वह दरवाजे से हटा गया। उसने लपक कर दो बोरियाँ अलग अलग बिछायीं। उन्हें बैठने का अनुरोध किया। कपड़े से सिलाई की हुई झालरदार दो पंखियाँ दी जो ताड़ की बनी हुई थी। वे दोनों सुस्ताने लगे।

"यह मकान किसका है?" बूढ़े ने बड़े संयत स्वर में पूछा। उसकी बूढ़ी अनुभवी आँखें किसन पर जमी हुई थीं।

किसन ने तुरन्त सोचा कि हो न हो यह दोनों कोई लड़की वाले हैं। ऐसे लड़की वाले जिसकी लड़की माँ को शायद पसंद नहीं है वर्ना ऐसे प्रश्न ये लोग नहीं पूछते।

उसने खड़े-खड़े ही कहा, "सेठ कस्तूरचन्द जी का।"

बूढ़ा फिर पंखा झालने लगा। प्रौढ़ व्यक्ति बिलकुल खामोश था। जैसे पत्थर की प्रतिमा। कभी कभी वह कनखियों से उसे देख लेता था' उसके देखने की भंगिमा से स्पष्ट जान पड़ जान पड़ रहा था कि हो न हो यह लड़की का बाप है और यह बूढ़ा 'शायद उसका दादा।...पर माँ इन दोनों को देखकर इतना घबरा क्यों गयी थी? उसने इन आगंतुकों का द्वार बंद करके अपमान क्यों किया?, प्रश्न पर प्रश्न उसके मस्तिष्क में छाते गये। कुछ क्षण विचारों की हलचल में गुजर गये।

"पानी पिलाओगे?" बूढ़ेने फिर मौन भंग किया।

"जरूर जरूर।" संकोच से नीची गर्दन करके किशन मटकी से पानी भरने लगा। दो गिलास पानी पीने के बाद बूढ़ा बहुत आश्वस्त दिखाई पड़ा। बोला, "तेरी माँ कहाँ है?"

"भीतर।"

"उसे बाहर बुला दो तो।"

किसन माँ के पास गया। वापस आ कर बोला, "माँ आपसे कोई बात करना नहीं चाहती। वह कहती है कि आप लोग मुझ पर दया करके यहाँ से चले जायें। पुराने नाते रिश्तों को भूल जाइए। सब कुछ कभी का खत्म हो गया था।"

बूढ़ा एकदम हाथ हिलाकर बोला, "नहीं, नहीं, कुछ भी खत्म नहीं हुआ। कुछ भी नहीं टूटा। सब टूट सकते हैं पर खून का रिश्ता नहीं टूट सकता। वह जन्म-जन्मान्तर रहता है। पीढ़ी दर पीढ़ी रहता है।"

माँ एकदम उनके पास आ गयी। किसन उसे देखकर भौचक्का रह गया। इस बार वह बहुत उत्तेजित लग रही थी। बोली, "किसन तू इन्हें कह दे कि हमारा आप से कोई रिश्ता नहीं है।"

"बहू!" बूढ़ा तड़प सा गया।

अब रूपली लाज शर्म हटाकर बूढ़े के बिलकुल सामने थी। बूढ़ा उसे देखकर गिड़गिड़ा उठा, "ऐसा न कहो बहू, क्या तू हमें माफ नहीं कर सकती। हमसे बड़ी भूल हो गयी थी।"

"भूल। भूल नहीं, आपकी घृणा थी। लोभ था। आप चाहते थे कि इस बहू को छोड़कर हम एक और बहू ले आयेंगे और अबकी बार तय की हुई दहेज की सारी रकम पहले ले लेंगे।...और आपका यह गाय सा सीधा सादा बेटा जो आज एक धार्मिक इन्सान सा लगता है उस दिन कितना स्वार्थी और नीच बन गया था जिस दिन उसने आपके सामने मुझ पर यह आरोप लगाया था कि वह छिनाल है। वह चरित्रहीन है।"

किसन सारी स्थिति तुरन्त समझ गया। ये दोनों आगन्तुक कौन हैं, अब उसके समक्ष दर्पण की तरह साफ थे। उसने उन दोनों को एक

बार इस तरह घूर कर देखा मानो वे दोनों बैठे-बैठे बदल गये हों।

बूढ़े ने किसन को सम्बोधित करके कहा, "मैं तेरा दादा हूँ बेटा और यह तेरा बाप है ? क्या एक गलती को भी सुधारा न जाय ?"

किसन विमूढ़ हो गया। उसे लगा कि उसके अन्तस की उमड़ती हुई भावनाओं ने उसका गला पकड़ लिया है। वह कुछ कहना चाहता है पर कह नहीं सकता। क्या सचमुच यह इसका दादा और यह इसका बाप है ? प्रश्न पर प्रश्न उसके मन को झकझोरने लगे।

रूपली बीच में ही बोल पड़ी, "यह नादान आपको इतनी भारी बात का उत्तर नहीं दे सकता। मैं उत्तर देती हूँ कि कुछ भूलें ऐसी होती हैं। जो अक्षम होती हैं। आपकी इस अक्षम भूल का कोई प्रायश्चित नहीं। यह भूल जिसने मेरे पिछले बीस बरसों को बेदर्दी से निगला है। जिसने मेरे सोने के तन और उमंगों भरे मन को दीमक की तरह पिंजर करके मोम की तरह गलाया है, उस भूल को मैं किस आधार पर माफ कर सकती हूँ। अब मैं भूल को एक ही शर्त पर सुधार सकती हूँ अगर आप मेरे पिछले बीस बरस मुझे वापस लौटा दें। क्या लौटा सकते हैं आप ?" रूपली की आँखें डबडबा कर भर आयी।

बूढ़ा गूँगा हो गया। प्रौढ़ व्यक्ति अपराधी की तरह सिर झुकाए निस्पंद बैठा रहा। किसन के मन में केवल प्रश्न बुरी तरह छा रहे थे।

रूपली ने अपना मुँह ओढ़नी के पल्ले में छुपा लिया। असीम अछोर वेदना से उसकी छाती फट पड़ी। वह रोती रही। सिसकती रही।

ठहरी हुई मौन हवा अब रूपली की सिसकियों पर तैरने लगी थी।

खूँटी पर टँगा हुआ गमछा धीरे-धीरे हिला।

बूढ़े ने विनीत-विगलित स्वर में कहा, "हम बड़े पापी हैं। घर की लक्ष्मी को निकाल कर हमने कभी भी सच्चा सुख नहीं पाया। सदा कोई न कोई विपत्ति हम पर मंडराती रही। और आज हमारे पास क्या नहीं है ? सभी कुछ है। पर इस हरे भरे घर में एक पुत्र नहीं है। पुत्र बिना जीवन निष्फल होता है। उसके बिना आदमी का लोक-परलोक दोनों बिगड़

जाते है।...किसन की माँ ! लाभू की दूसरी बहू लम्बी बीमारी के बाद एक बरस पहले चल बसी है। बहू, घर चल हम तेरे पाँव पड़ते है। तू जो हमें दण्ड देगी, हम उसे भोगेंगे।"

'मै आपके साथ नहीं चलूँगी। मेरा और आपका सम्बन्ध उसी दिन खत्म हो गया जब आप एक हजार रुपयों के पीछे मेरे सुहाग में आग लगाकर चले आये थे और बाद में आपके बेटे ने मेरी कोख को कलंकित बता कर शेष सम्बन्धों को भी खत्म कर दिया था।"

"जो हो गया, उसके लिए तू हमें जो चाहे दंड दे दे पर अब तुझे घर चलना ही पड़ेगा।" और बूढा पश्चात्ताप से गर्दन हिलाकर बोला, "होनहार सबसे बड़ी होती है। होनी के सामने बन्दे की नहीं चलती। बन्दा उसके सामने निर्बल-निरुपाय है। वह कुछ नहीं कर सकता। होनी राजा राम को बनवासभेजा और सत्यवादी हरिश्चन्द्र को चाण्डाल बनाया।

थोड़ी देर कोई नहीं बोला।

एक असंह्य मौन छाया रहा।

रूपली अपने आपको पूर्ण स्वस्थ करने की चेष्टा कर रही थी। किसन भी कुछ कहने के लिए अपने आपको प्रेरित कर रहा था, लेकिन वह कुछ कह नही पाया। वह सोच रहा था कि माँ ने उसे कभी भी यह सब नहीं बताया। वह सदा यह बताती आयी है कि उसका पति कही परदेश चला गया था और वहाँ से वह वापस कभी नही लौटा। उसने यह भी बतलाया था कि उसका ससुराल में कोई भी नही है। यह सब माँ ने क्यों छुपाया ? आज उसके सामने माँ एक झूठ बनकर खड़ी है। उसने माँ की ओर देखा। माँ का मुख दुख की यन्त्रणाओं से घिरा था। ऐसी दयनीय माँ को वह कुछ भी नहीं कह पायेगा।

पहली बार रूपली के पति लाभू ने अपना मौन भंग किया। उसने कनखी से एक बार रूपली को देखा और बाद में वह नजर झुकाए हुए यंत्रवत बोला, "मै भी तुमसे क्षमा माँगता हूँ। कलंक मैंने तुम पर लगाया था इसलिए तुम दंड भी मुझे दो। पर मेरे बाप को निराश मत

करो। अब तुम घर चलो। मेरे बाप के बुढ़ापे पर दया करो। यह तुम्हारे द्वारे आया है।"

रूपली के मानस-पटल पर अतीत तैर गया।

उसे याद आया—

लगभग बीस बरस पहले।

वह दुल्हिन बनी है। उसके हाथ सुहाग की मेंहदी से रचे हैं। वह अपने दूल्हे को जिज्ञासा भरी नजर से लुक-छुक कर देख रही है। वह सोचती है—'मेरा दूल्हा साक्षात 'ईसर' है। गवर (गणगौर) माँ के भरतार (पति) ईसर जैसा।' वह बहुत प्रसन्न है। उसके पाँव खुशी के मारे जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं। उसे बार-बार महसूस होता है जैसे उसके पंख लग गये हैं और वह नीले-नीले आकाश में सोन-चिरैया की तरह फुदक-फुदक कर उड़ रही है। रात में भाँवरे पड़ते हैं। हथलेवे का लाल सुरंग निशान दूल्हन के मन को मोहने लगता है। दूल्हन जवान है अतः मुकलावा (गौना) भी साथ होने का निश्चय हो गया है। टीके की रात—सुहागरात। पूरा चाँद आकाश के बीचों-बीच अपनी सम्पूर्ण आभा में चमक रहा था। वह लहंगे, ओढ़ने और काँचली में गठरी बनी बैठी है। उसका सलोना पिया लाभू आता है। कितनी लाज उस दिन उसके दिल में एक साथ जाग पड़ती है और जब लाभू इधर-उधर की बातों के बाद उसे छूता है वह पत्थर की बन जाती है।

सुबह ही रंग बदरंग हो जाता है।

उसके ससुर और बाप में 'टीके' के दायजे (दहेज) की रकम को लेकर झगड़ा हो जाता है।

ससुर गणेशाराम कहता है, "समधी जी, आपको एक हजार रुपये देने ही पड़ेंगे। अब आप अपने वायदे से मुकर रहे हैं।"

"मैंने आपसे कोई वायदा नहीं किया।" उसका बाप किशना मुकर जाता है।

"इतना सफेद झूठ?"

"झूठ आप बोलते हैं।"

वातावरण देखते-देखते जहरीला हो जाता है। लाठियाँ निकल आती हैं—दोनो ओर से। भयभीत हिरनी की तरह हो जाती है रूपली। ईश्वर से आरदासना करती है। प्रसाद बोलती है मंगल-शुभ के लिए।

उसका ससुर लाठी जमीन पर जोर से ठोक कर कहता है, "बारात बिना खाये-पीये ही लौट जायेगी।"

"वह इस तरह नहीं जा सकती।"

वह फफक-फफक रो पड़ती है। वह बहुत निरभागी है। अब क्या होगा।...हुआ वही जो सदा होता आया है। बारात वापस बिना मुकलावा किये लौट जाती है। हजार साधें मन में बसाए हुए रूपली घायल मोरनी की तरह जाती हुई बारात की धूल को देखने लगती है। थोड़ी देर में वहाँ वीरानगी छा जाती है। शेष चिन्ह स्मृतियों के रूप जहाँ-तहाँ पड़े रहते हैं।

रूपली भीतर के कमरे में आकर रोती है। माँ उसे डाँटती है, "किसको रोती है फूटी भागिन। कैसे फूटे भाग लेकर मेरे पेट से जन्मी है। तेरे कारन उनकी मूँछ का चावल चला गया। इज्जत धूल में मिल गयी।"

कुछ दिन बीत जाते हैं।

एकाएक रूपली चक्कर खाकर गिर जाती है। उसे अन्न की बास आने लगती है। एक नया आलस उसके अंग-अंग में समा जाता है।

घर में एक नयी हलचल उत्पन्न हो जाती है।

बाप मजबूर हो जाता है। उसकी ससुराल समाचार भेजता है। अपनी समधी को पीड़ित करने की मनसा रखनेवाला उसका ससुर साफ इन्कार कर जाता है। बाप अपनी कुलटा बेटी को पीटता है। बेचारी गाय रूपली कसाईयों के हाथों पड़ जाती है।...गाँव उसकी हँसी उड़ाता है। ताने देता है। हुरियें-हुरिये करता है। आखिर रूपली तंग आ

जाती है। क्या करे ? गाँव मे न डाक घर और न वह पढ़ी-लिखी। पति से मिलने का कोई साधन नही। तंग आ जाती है जिन्दगी से। मरने चल पड़ती है।

कूर्वा ! नीरव और शांत। थके माँदे बैल दिनभर की कठोर मेहनत के बाद सोये पड़े हैं। वह उन्हें देखती है। इच्छा होती है—मर जाऊँ। मर जाऊँ ?···लेकिन सहसा वह मरने का विचार छोड़ देती है। वह नही मरेगी। वह पापिन नही फिर वह क्यो डरे मरे ? और वह निरुद्देश्य यात्री की तरह चल पड़ती है—अनजान रास्ते के अपरिचित सफर पर।

शहर आ जाती है। अपने नारीत्व-सतीत्व की रक्षा करती हुई वह उसी की जाति की एक बुढ़िया 'धन्ना' के पास परवरिश पाती है। उसे भी वह सही बात नही बताती है। केवल विपता की मारी बताती है। आज धन्ना इस ससार में नहीं है पर रूपली उसकी बड़ी कृतज्ञ है। उसे देवी की तरह मानती और पूजती है। शहर मे वह आटा पीसती है, मिर्च-मसाले पीसती है। जूठे बर्तन मलती है। हवेलियो मे झाड़-बुहारी करती है और इन सबके बावजूद वह सदा अपने प्रीतम के लिए रोती है। और एक दिन वह यह मनहूस खबर पाती है कि उसके प्राण-प्यारे ने दूसरा ब्याह कर लिया है।

आशा अन्तहीन प्यास की तरह ही जाती है।

समय सूखे पत्तों की तरह उड़ता रहता है।

वह किसन को जन्म देती है। पालती-पोसती है। पढ़ाती है और आज वह सरकारी नौकरी में भी लग गया है।

इन बरसों में उसने न अच्छा पहना है और न अच्छा खाया है। परदेशी पिया की गोरड़ी (पत्नी) की तरह वह झुर-झुर पिंजर हो गई है। उसका मन विरह की आग से जल गया है।

और आज उसका ससुर और पति उसे लेने आये हैं।

ससुर ने ध्यानमग्न रूपली को झिंझोड़ा, "मेरे बुढ़ापे की लाज नहीं

रखोगी बहू ! पच्चीस बीघा जमीन है। मकान है। और किसन के बहुत अच्छे-अच्छे रिश्ते आ रहे है। एक आदमी बीस हजार रुपये देने को तैयार है। बहू, चलो, अपने घर !" बूढ़े की आँखों में लोभ नाच उठा।

"मैं नही चलूंगी।"

इस बार बूढ़ा कुछ कठोर हो गया उसकी आँखें गुस्सीली बिल्ली की तरह चमक उठीं। वह स्वर को लम्बा करता हुआ बोला, "बहू, जग हँसाई अच्छी नही होगी। भूल का प्रायश्चित होता ही है।" और बूढ़ा बड़ी नाटकीयता से आँखों में आँसू लाकर बोला, "कसूर तेरे पति का है। वह ही झूठ बोला था। यदि वह मुझे पहले ही बता देता तो आज इतनी समस्या ही खड़ी नहीं होती ?"

रूपली अपने लोभी और दुष्ट ससुर की चालबाजी समझ गई। उसे अच्छी तरह मालूम था कि उसका ससुर यह सब नाटक खेल रहा है। अब जब उसके अपने बच्चे को रात-दिन मेहनत करके, चक्की पीसकर, भूखी रहकर उसे बड़ा किया और पढ़ाया···लिखाया तो यह अपनापन जताने लगा। कितना दुष्ट है। घृणा की लहरें उसके मस्तिष्क में तीव्र वेग से छाने लगी और उसने स्पष्ट शब्दों मे कहा······"मैंने कहा न, कि आपसे मेरा कोई रिश्ता नहीं है। आज बीस हजार रुपयों का लोभ आपको यहाँ तक खींच लाया है।"

"छिः छिः रुपयों का लोभ ! बहू इतनी ओछी बात क्यों करती हो ?"

"ओछी या सच्ची ? ससुरजी, आपने सुना होगा कि किसन बड़ा हो गया है। बी० ए० पढ़ गया है। नौकरी भी लगने वाली है, लोग कहते होंगे कि लड़का बड़ा होनहार, तभी आप ···नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं आपके साथ नहीं चलूंगी और न मेरा बेटा ही जायेगा।"

बूढ़े ने बड़ी आशा से अपने पोते की ओर देखा। किसन से उसकी नजरें चार हुई और उसने अपनी दृष्टि इस तरह झुकाली जिस तरह

उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा हो। लेकिन उसे यह जरा भी अच्छा न लग रहा था कि ये लोग उसकी माँ पर दबाव दें। वह चुपचाप बैठा हुआ इन दोनों की बातचीत सुनता रहा। देखते-देखते उसकी माँ गर्म हो गयी और उसका दादा भी धुंआ-फुंआ हो उठा। बात बहुत ही जहरीले वातावरण की सर्जना के साथ समाप्त हुई।

× × ×

शाम को ही रूपली ने कहा·······"किसन, हम यह शहर छोड़ेंगे।"

'क्यों माँ ?"

"इसलिए कि तुम्हारा दादा बहुत लोभी है। दुष्ट भी है। दया का पात्र भी नहीं है। हालांकि मुझे उसके बुढापे पर रहम आता है लेकिन बेटा मैं सोचती हूँ कि इस पर दया करना प्रभु को नाराज करना है। आज चौधरी बंशीधर का धन उन्हें फिर हमारी ओर खींच लाया है। इससे पहले वे लोभी तुम्हें एक कुलटा की औलाद कहते थे। ऐसे आदमी को अपने पापों का दण्ड मिलना ही चाहिए। माँ उत्साह से बोली, "और हाँ, अब वे यह भी इन्कार नहीं कर सकते कि तू उनका पोता नहीं है। और मैं तुम्हें एक ऐसे अच्छे और बड़े आदमी के रूप में देखना चाहती हूँ जो इन गिरे हुए लोगों के सामने एक आदर्श हो। इसलिए आओ हम यहाँ से चलें। अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। जहाँ रोटी, वहीं अपना घर। हमारी हर चीज नई और अपनी होगी।"

किसन ने देखा······माँ का चेहरा एक पवित्र आलोक से दीप्त हो गया है, उस आलोक में एक नारी का ओज और अहम् दोनों है।

॥ समाप्त ॥